नीचे सुरक्षित चले गये, उस समय भगवान के चक्र श्रीगिरिराज जी के ऊपर मँडराते रहे तथा अपने प्रचण्ड अग्नि तेज से वर्षा को वहीं सोखते रहे। तभी से यह स्थल, चक्रेश्वर तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया।

ब्रज में महादेवजी के चार स्वरूप विख्यात हैं। श्रीगोवर्द्धन में आप चक्रेश्वर नाम से विराजते हैं। श्रीशिवचतुर्दशी की रात्रि को यहाँ का उत्सव दर्शनीय है।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीमदाचार्य यहाँ एक सप्ताह पर्यन्त रहे तथा श्रीमद्भागवत पारायण किया। ऐसी मान्यता है कि महादेवजी भी अपने दिव्य स्वरूप से कथा श्रवण करते थे। "८४ बैठकन कौ चरित्र"

भक्तप्रवर नन्ददासजी मानसी गङ्गा के पास श्रीगिरिराज जी के सातवें द्वार के मुखिया कहलाते हैं। "८४ वैष्णवन की वार्ता भाव प्रकाश"

श्रीसनातन गोस्वामी की भजन कुटी

चक्रेश्वर महादेव के निकट ही एक निर्जन स्थली पर श्रीसनातनजी भजन करते थे। मच्छरों का यहाँ बहुत उत्पात रहता था। श्रीसनातनजी के भजन में भी विक्षेप होने लगा। उन्होंने विवश होकर इस स्थान को छोड़ देने की सोची, परन्तु अपने जनों पर अनायास ही प्रसन्न हो जाने वाले महादेवजी ने, विप्र रूप धारण कर श्रीसनातनजी को दर्शन दिये और कहा, "तुम यहाँ से स्थान छोड़कर मत जाओ। भविष्य में मच्छर तुम्हें न सतायेंगे।" ऐसा ही हुआ। आज भी यह चमत्कार यहाँ दीखता है, चारों ओर कितने भी मच्छर हों श्रीचक्रेश्वर के आस-पास मच्छरों का उत्पात प्रायः नहीं होता।

श्रीसनातनजी तितिक्षा पूर्वक यहाँ निवास करते थे। श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा का उनका नियम था। वृद्ध शरीर होने पर सात कोस, परिक्रमा में कठिनाई होने पर भी वे अपना नियम निभाते रहे। एक दिन एक परम सुन्दर बालक ने आकर कहा, "बाबा ! अब इतने वृद्ध हो गये हो, परिक्रमा का नियम छोड़ दो तथा यहीं भजन किया करो।" श्रीसनातनजी नियम के पक्के रहे तथा परिक्रमा करते रहे। एक दिन पुनः वह बालक आया तथा श्रीगिरिराजजी की एक शिला पर अपना श्रीचरण चिन्ह अंकित कर इन्हें देकर बोला, "बाबा ! आजसे इसी शिला की प्रदक्षिणा कर लिया करो, तुम्हें गिरिराज परिक्रमा का ही फल प्राप्त होगा" अपना स्वरूप प्रकट कर जब कन्हैया ने श्रीसनातनजी को यह सब जतलाया, तो वे विभोर हो गये। गद्गद वाणी, अश्रुपूरित नेत्र, खुले के खुले रह गये। वे कुछ कह न सके। सनातनजी की दशा देखकर प्रभु ने अपना भान कराया-

शिला समर्पिया कृष्ण हैला अदर्शन ।
बालक न देखि व्यग्र हैला सनातन ॥
सनातन व्याकुल देखिया अदृश्येते ।
निज परिचय दिला विह्वल स्नेहेते ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण चरण चिन्ह अंकित यह शिला आज भी श्रीवृन्दावन में, श्रीराधादामोदर मन्दिर में दर्शनीय है !

सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा की समाधि पास ही है ।

सिद्ध श्रीकृष्ण बाबा

गौड़ीय महात्माओं/साधकों की चिन्तन प्रणाली का दिग्दर्शन कराने वाले सिद्ध बाबा का प्रारम्भिक जीवन जयपुर तथा नन्दग्राम में बीता । वहीं श्रीराधारानी की कृपा की अनुभूति कर आप चक्रेश्वर आकर रहने लगे । शास्त्राध्ययन की कामना ने बड़ी तीव्रता से इन्हें आलोड़ित कर दिया । अपनी असमर्थता देख इन्हें जीवन निराशामय लगने लगा ।

ऐसी विचित्र परिस्थिति में श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीललिताजी की अनुभूति ने सम्बल दे जीवन की सभी विघ्नपूर्ण परिस्थितियों को क्षय कर दिया । शास्त्र तथा वैष्णव ग्रन्थ सहज स्फुरित होने लगे ।

सम्प्रदाय ग्रन्थों की मर्यादा में आपने अष्टकालीन लीला के साथ-साथ प्रिया-प्रियतम की अष्टकालीन लीला स्मरण पद्धति का निरूपण कर 'गुटिका' के रूप में प्रचलन किया ।

प्रिया-प्रियतम की कृपा की इनकी अनेक अनुभूतियाँ साधकों के लिए प्रकाश स्तम्भ बनी है ।

श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर

लक्ष्मीनारायणायैव गोवर्द्धनसुखायते ।
नमस्ते गोपवृन्दानां परिपूर्ण ब्रजोत्सव॥

(रूद्रयामल)

हे लक्ष्मीनारायण ! आपको नमस्कार । आप गोवर्द्धन में सुख प्रदान करने हेतु विराजते हैं । गोपवृन्दों के उत्सव रूप आपको नमस्कार है ।

ब्रज में श्रीगिरिराजजी के निकट "श्री" सम्प्रदाय की गद्दी सोलहवीं शताब्दी से ही विराजमान है । इस गद्दी के प्रथम आचार्य हुए श्रीशठकोप मुनि । उन्होंने 'सहस्र गीति सार' ग्रन्थ की रचना की जिसमें श्रीगिरिराज जी के सरस चित्र अंकित किये हैं ।

श्रीशठकोपमुनि महाराज

श्रीरामानुज सम्प्रदाय के अधिकांश आचार्य दक्षिण में ही हुए तथा उसी क्षेत्र में निवास भी करते रहे हैं, परन्तु फिर भी श्रीवृन्दावन तथा वृन्दावनविहारी के प्रति उनका अनुराग रहा है।

श्रीशठकोपमुनि भी विशेष ख्याति प्राप्त आचार्य हुए हैं। वे श्रीगिरिराज में रहते रहे। अपने ग्रन्थ 'सहस्रगीति सार' में उन्होंने श्रीकृष्ण की वृन्दावन लीला का विस्तृत वर्णन किया है। एक जगह वे स्पष्ट कहते हैं कि 'श्रीमन्नारायण' नाम स्मरण का फल श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा, उन्हीं की लीला में अभिनिवेश तथा उन्हीं की प्राप्ति है।

कृष्णपादाम्बुजद्वन्द्वं प्राप्तुं कुतुकिनान्तु वः।
चिन्तनीयं सदा नाम नारायण इति ध्रुवम्॥[1]

(सहस्र गीति सार 10/5/1)

श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रीति, आचार्यों महानुभावों के जीवन का एक अङ्ग रही है। श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान के उपासक होने पर भी श्रीकृष्ण के प्रति श्रीशठकोपमुनि अत्यन्त निष्ठावान रहे हैं।

इन्द्रध्वज वेदी

इन्द्रध्वजवेदी एई नन्दराय।
करितेन इन्द्रपूजा सर्वलोके गाय॥

(भ० र०)

गोवर्द्धन ग्राम की पूर्व दिशा में स्थित है। श्रीनन्दरायजी इसी स्थली पर इन्द्रपूजन किया करते थे। भाद्रमास की इन्द्रद्वादशी में यह पूजा की जाती है। पश्चात् श्रीकृष्ण ने इन्द्रपूजा के स्थान पर गोवर्द्धन पूजन का आयोजन करवाया, जिसका वर्णन हम आगे गोविन्द कुण्ड के प्रसङ्ग में करेंगे।

ऋण मोचन तथा पाप मोचन

उक्त दोनों कुण्ड अब लुप्त प्रायः हो चुके हैं। एक कुण्ड की स्थिति बड़ी शोचनीय है, दूसरा पाटकर बिजली कार्यालय बना दिया गया है। इनके पास ही एक,"धर्म रोचन कुण्ड" भी लुप्त प्रायः हो गया है; स्मृति सूचक एक पत्थर अवश्य वहाँ लगा है।

---

1. श्रीनारायण भगवान का सतत स्मरण करने से श्रीकृष्ण के पाद-पद्मों में अनुराग सहज हो जाता है, यह बात ध्रुव सत्य है।

दान घाटी

गोवर्द्धन से आन्यौर ग्राम की ओर परिक्रमा में, प्रारम्भ में ही, यह स्थली दर्शनीय है। श्रीकृष्ण की, दान के मिस हुई अनेक सरस वार्ताओं से यह स्थली, आज भी मुखरित है। अत्यन्त मनोरम वृक्षावलि अपने में ही सौन्दर्य लिये पूर्व गाथाओं को दोहरा रही है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी जब श्रीगिरिराज परिक्रमा हेतु पधारे तो दान प्रसङ्गादि के विषय में जिज्ञासा करने लगे-

अहे ! श्रीनिवास एई दान घाटी स्थान।
रसिकेन्द्र कृष्ण एथा साधे गव्यदान॥
एई खाने श्रीचैतन्य संगेर विप्रेरे।
जिज्ञासेन दान प्रसङ्गादि धीरे-धीरे॥[1]

दान ग्रहण करने वालों में उत्तम हैं नन्दनन्दन। गोरस बेचने जाती, ब्रज बालाओं के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए नन्दनन्दन ब्रज बालाओं से दान माँगते हैं और उन्हीं ब्रजबालाओं की भावनाओं को सत्कारने, सहलाने, हेतु सरस वर्जना-तर्जना कर, और-और रस वर्द्धन करते हैं और यह बालाएँ 'हाँ-हाँ ते भली नाहीं' में सन्निहित 'नहीं में नहीं' के मिस हाँ-हाँ ही कहना चाहा करती हैं तथा यह गोरस दान में पगी सुरस विवशता, किस प्रकार रसीली, रङ्गीली केलि में परिणत हो जाती है तथा मधुर रस प्रवहमान हो जाते हैं, यह कहने का सामर्थ्य लेखनी में कहाँ है भला ?

घट्टक्रीड़ाकुतुकितमनानागरेन्द्रो नवीनो,
दानी भूत्वा मदननृपतेर्गव्यदानच्छलेन।
यत्र प्रातः सखिभिरभितो वेष्टितः संरुरोध,
श्रीगान्धर्वां निजगणव्रतां नौमितां कृष्णवेदीम्॥[2]

(स्तवावलि)

दूध-दही बेचने का क्रम ब्रज में सदा से ही चलता आया है, परन्तु इन ब्रज बालाओं का दूध-दही बेचने का एक मिस नन्दनन्दन श्यामसुन्दर की, छवि माधुरी का, उनके साथ रसमयी बतरान, रसीली-रङ्गीली स्मृतियों में भर उन्हीं

1. हे श्रीनिवास यहीं दान घाटी नामक स्थल है। यहीं श्रीकृष्ण ने गोपिकाओं से दान माँगा था। इसी स्थल पर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ब्रजयात्रा के समय साथ के ब्राह्मण से दान प्रसंगादि के विषय में पूछा था।
2. इस स्थली पर दान ग्रहण करने की लीला के कारण कौतूहलाक्रान्त मन से नवीन नागरराज श्रीकृष्ण प्रातः काल दान ग्रहण करने वाले का वेष धारण कर चारों ओर से सखा मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर मदन महीपति को प्राप्त दुग्धादि ग्रहण करने के छल से सखियों द्वारा परिवेष्टित श्रीराधा को रोक लेते हैं- उसी श्रीकृष्ण वेदी (दान घाटी) की मैं स्तुति करता हूँ।

की सन्निधि का, आस्वादन करना है। वे दूध-दही बेचने जाती तो अवश्य हैं-परन्तु श्रीकृष्ण की खोज में उनके नेत्र सदा चञ्चल बने रहते हैं। उन जादूगर की मोहनी से ठगी-सी कई बार वे सारा का सारा दूध-दही वापिस घर लौटा लाती हैं। प्रेम के उस जादूगर की अनन्य प्रियाएँ, अपने जीवन सर्वस्व को आनन्दित करने के लिए, सब कृत्य करती हैं।

श्रीगिरिराज की सघन वृक्षावलि मध्य से होकर आती पग-डण्डियों पर, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्राभरण पहनें, सिर पर मटुकियाँ धरे, छम-छम ध्वनि से मार्गों, वीथियों को गुञ्जायमान कर देती हैं और यह गिरि गुहाएँ अपने सौभाग्य पर पुरस्कृत होने की प्रतीक्षा में रहती हैं। इसी छम-छम ध्वनि को सुन प्रणयी रिझवार रसिकेन्द्र दानवीर, इन ब्रजाङ्गनाओं के मार्ग में आस-पास की शिलाओं से कूद, उन्हें कब रोक लेते हैं और दान माँगने लगते हैं-किसी को पता ही नहीं चलता। हाँ, तो ये बालाएँ दूध-दही बेचने जाती हैं। 'मटकी ढोरी सीस ते' वहाँ दूध-दही की कीच ही मच जाती है। रास्ते में आ जाते हैं नन्दनन्दन-

देढ़ी पाग बनाइ कै, दान कहति हैं लैन।
ललित त्रिभंग ठाड़े भये, ग्वालन दै-दै सैन॥

दान लेने की भूमिका क्या बनी कि ग्वालिनि चल दी-

पीठ मोरि आगै चली ऊतर नारि बनाय।
सारी झलके वदन पै, सोभा बरनि न जाय॥

दान-मान के रहस्यों में प्रवहमान, रस से आप्लावित तथा अपने सौभाग्य पर गर्वित यह स्थली, सुखद है, सुन्दर है।

अति सुख पायौ सुन्दरी, वृन्दाविपिन विलास।
गोविन्द-प्रभु स्यामहि मिलि, पूजी मन की आस॥

धन्य हैं यह ब्रजाङ्गनाएँ तथा उनके जीवन-धन श्यामसुन्दर।

श्यामसुन्दर कभी-कभी मार्ग में आ खड़े होते हैं और जब यह रगमगी भीर दूध-दही लिये गिरिराज की संकुचित वीथियों से होकर आती है तो यह-

अहो नागरी ! गोवर्द्धन गिरि की-
बिनु लाहैं क्यों उतरैगी घाटी।

बिना दान लिये मार्ग से जाने नहीं देते उस 'हाँ' और 'ना' में मची रार-तकरार, उसमें 'दान निबेरने' के अनूठे ढङ्ग और इन्हीं चतुराई पगे वाक्यों से मुखरित, गिरिराज की एकान्तिक स्थलियाँ, सघन वीथियाँ, हाँ, हाँ सभी इन प्रसङ्गों से धन्या हुई इस सौभाग्य मद से गर्वित हो रही हैं।

सुरस केलि रहस्यों की यह स्थली 'दानघाटी' नाम से विख्यात है।

हाथरस वाला लक्ष्मी नारायण मन्दिर

यहाँ भगवान विष्णु तथा लक्ष्मीजी विराजमान हैं। इसी के प्राङ्गण में पूज्य पंडितजी महाराज नाम के एक परम विरक्त, भागवत स्वरूप महात्मा भजन-लीला चिन्तन में निमग्न रहे।

श्रद्धेय पंडित गया प्रसादजी

ब्रज के उन महानुभावों में जिन्होंने वैराग्य के साथ-साथ प्रिया प्रियतम के अनुराग में परिपूर्णता निभाई श्री महाराज जी को कदापि अग्रणी मानना अत्युक्ति न होगी। उत्कृष्ट वैराग्य का जो स्वरूप पू.पंडित जी के जीवन का अलंकार बना रहा वह अद्वितीय था। ऐसी निस्पृहता, सजगता, आदर्श तथा अनुरक्ति दुर्लभ ही कहनी होगी।

महाराज जी का जन्म फतहपुर जनपद की तहसील खागा के कल्याण पुर ग्राम में १५.११.१८९३ में हुआ था। वहाँ से आपके पिताश्री कारणवश हाथरस चले आए। वहीं आपका पूर्व का जीवन व्यतीत हुआ। विवाह हुआ। एक पुत्र तथा एक पुत्री आज भी इस भूमि को गौरवान्वित कर रहे हैं। नौकरी की है बड़ी ईमानदारी से। जब उस फैक्टरी के मालिक उसे पंजाब ले गए, पू. पंडित जी को साथ चलने के लिये आग्रह किया पर आपने मना कर दिया तथा यहीं श्रीमद्भागवत अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। अत्यल्प अर्थ व्यवस्था के साथ अपने परिवार का आदर्श रूप में परिपालन करते रहे।

परम पूज्य श्री उड़िया बाबा का त्याग वैराग्य आपका आदर्श बना। उसी रहनी से आप भजन में रत हो गए। पंडित जी महाराज रास के प्रेमी थे। एक बार रास में निमग्न थे। करहला की मण्डली के श्रीठाकुर स्वरूप ने पुष्प फैंककर संकेत किया और आप छोटे-छोटे बालकों को भगवान के भरोसे छोड़ वृन्दावन पैदल ही चले आए। पानीघाट के दूसरी ओर खड़े वृन्दावन में प्रवेश की सोच रहे थे कि श्याम सुन्दर ने अपनी अनुपम बंकिम झाँकी से पंडित जी महाराज को मोह लिया और वे अपने जीवन का उत्तरार्ध अन्तिम समय तक ब्रज में ही विराजते रहे।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर में अपने जीवन काल के अन्तिम दिनों तक वे विराजमान रहे। परिक्रमा और मधुकरी का नियम वे अपना सामर्थ्य रहते निबाहते रहे। आप पैदल ही वृन्दावन जाते। श्री गुरु महाराज के तथा श्रीबिहारी जी महाराज के दर्शन कर लौट आते।

रास स्वरूपों में मुकुट धारण करने के पश्चात् उनकी दृढ़ भगवद्भावना रहती। अपनी गोद में बिठा बाल भाव से उन्हें दुलारते, खिला पिला कर परम प्रसन्न होते।

वैसे तो उनका वात्सल्य भाव ही प्रधान रहा। ब्रजाङ्गनाओं, सखी समुदाय की वे चर्चा प्रायः नहीं करते थे, परन्तु एक बार भक्तिमती ऊषा बहन जी जिनका श्रीराधाष्टमी पर बरसाने जाने का नियम ही था। वे श्री गिरिराज होकर ही जाया करतीं। वहाँ पू. पंडित जी महाराज के दर्शन अवश्य करने जातीं। प्रसङ्गवश एक बार किशोरी जी के प्राकट्य, अष्ट सखियों तथा अन्य गोपिकाओं के प्राकट्य, युगल के विहार में ललिता, विशाखादि सखियों की सेवा का स्वरूप वर्णन करते करते वे गद्‌गद् हो गए थे। यह बात जब बहुत से लोगों को पता चली तो वे स्तब्ध रह गए। बात भी विचित्र थी- पू. बहन जी के प्रति उनकी विशेष आत्मीयता थी तथा पू. बहन जी से मिलने का भी एक विशेष संयोग है।[1] उसी के वशीभूत हो उनके अनजाने में यह चर्चा स्फुरित हुई।

सद्‌गुरु आज्ञा पालन, महद् आश्रय, नारी समुदाय से सावधानी, केवल आवश्यक संग्रह, नाम में प्रगाढ़ निष्ठा, आत्म निरीक्षण, मौन, संयम इत्यादि के प्रति सभी साधकों को सजग रहने पर दृढ़ बल देते। स्वयं तो बड़ी कठोरता और सजगता से पालन करते।

श्रीकृष्ण की अनुभूति/साक्षात्कार कर वे अपनी तन्मयता में तलहटी में ही विराजमान रहे। पूजनीया ऊषा बहन जी ने एक बार उनसे बात बात में पूछ लिया। महाराज जी, "शास्त्र मत है, संतों ने भी इसी का अनुमोदन किया है कि श्री गिरिराज की शरण में आने पर श्याम सुन्दर का साक्षात् दर्शन सहज सुलभ हो जाता है-आप यहाँ वर्षों से रह रहे हैं।" पू. पंडित जी का बड़ा ही संकुचित तथा नपा तुला उत्तर था, "सन्तन ने सांची कही है"। दैन्य उनमें पूर्णतः समा, स्वभाव बन गया था।

समर्पण तथा भगवन्नाम के सातत्य पर वे अधिक बल देते। अनन्यता के विषय में यह दृष्टान्त वे अवश्य देते। "पहले दास प्रथा थी। दास बिकते। एक बार एक सेवक कूँ खरीद के मालिक लायो। वा ते पूछी, "तुम्हारौ नाम कहा ए।" बोल्यौ, "जो आप रख देंगे।" काम कहा करोगे, "आप जो कहेंगे" महाराज जी सदा कहते, समर्पण कौ यह स्वरूप होनौ चहिये।"

इसी प्रकार श्याम सुन्दर की लीला-चिन्तन में निमग्न वे अपना जीवन यापन करते रहे। भादौं कृष्ण चतुर्थी, सम्वत २०५१ को आप नित्य लीला में सम्मिलित हो गए।

यमुनावतो

गोवर्द्धन से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। किसी समय में यहाँ श्रीयमुनाजी प्रवहमान थीं, उसी से इसका नाम 'यमुनावतो' हो गया। बाढ़ के

1. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषाबहन जी ग्रन्थ का पृष्ठ ४६१ देखें।

दिनों मे आज भी श्रीयमुना की धारा यहाँ से होकर जाती है। श्रीकुंभनदासजी तथा श्रीचतुर्भुजदासजी की जन्मभूमि है। वे यहीं रहते थे।

'कुंभन तलाई' तथा 'श्यामा गाय की बैठक' आज भी यहाँ के मुख्य आकर्षण हैं। कहते हैं कि एक पीपल का वृक्ष है, जो शाखा प्रशाखा अद्यावधि विद्यमान है, उसके नीचे कुंभनदासजी तथा श्रीनाथजी प्रायः मिलते थे।

पारासौली (चन्द्र सरोवर)

गोवर्द्धन ग्राम से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। गोवर्द्धन क्षेत्र में रासस्थली रूप में इसी स्थली का वर्णन मिलता है। वैष्णव ग्रन्थों के अनुसार इसे सारस्वत कल्प की महारास स्थली भी माना गया है। यहाँ श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने रासलीला के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। श्रीगोपालदासजी ने चन्द्र-सरोवर के निकट की सम्पूर्ण स्थली को रासस्थली मान आदि वृन्दावन के नाम से सम्बोधित किया है। एक पद में यहाँ की शोभा का वर्णन करते हुए वे कह रहे हैं-

'चारों ओर सघन निकुञ्जें हैं, जहाँ वल्लरियों ने पुष्प, उपहार स्वरूप प्रदान कर स्थली को सौरभान्वित कर, रासलीला के लिये उपयोगी बना दिया है। पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जायमान हैं। तमाल वृक्षों के आश्रय में हेम वल्लरियाँ सुशोभित हो रही हैं। अनेक वाद्यों की मधुर ध्वनि हो रही है, जिसका श्रवण कर मयूर बौरा गये हैं। इन्हीं रसमयी निकुञ्जों में प्रिया-प्रियतम, निज-स्वरूप-भूता सखियों सहित रास-विलास में निमग्न हो रहे हैं।

कुञ्ज सदन सुहामणा शोभा तणों नहीं पार।
विविध रास मण्डल रची खेलें श्रीनन्दकुमार॥

'आदि वृन्दावन' का वर्णन करते हुए भक्तप्रवर 'सूरदासजी' अपने ग्रन्थ 'सूर सारावली' में कहते हैं-

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुञ्ज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिया-प्रियतम दोऊ निगम भृङ्ग गुञ्जार॥

ब्रज की प्रत्येक स्थली, श्रीकृष्ण की किसी न किसी लीला से सम्बंधित है। श्रीगिरिराज जहाँ एक ओर गोचारण के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं, वहाँ गिरि कन्दराओं में इन ब्रज-बालाओं सहित एकान्तिक रास-विलास से धन्य है यह स्थली। पारासौली, चन्द्र सरोवर सभी श्रीकृष्ण की एकान्तिक रसमयी लीलाओं के सृजन में, सहायक है। पास ही श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक है।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

सरोवर के पास ही छोंकर वृक्ष के नीचे श्रीमदाचार्य की बैठक है।

एक बार एक वैष्णव ने श्रीमदाचार्य से, श्रीनाथजी के प्रत्यक्ष दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। महाप्रभुजी किसी विशेष चिन्तन में बैठे थे, उन्होंने सहज कह दिया, "यदि तुम श्रीगिरिराज की, बिना रुके तीन परिक्रमा कर लो, तो तुम्हें साक्षात् रूप में भगवान के दर्शन हो जावेंगे।" वैष्णव ने श्रद्धा पूर्वक, इसी निष्ठा, से परिक्रमा शुरु कर दी। परिक्रमा में पहले तो उसे श्वेत रङ्ग का एक सर्प दिखलाई दिया। अपशकुन मान वैष्णव ठिठक गया। पूंछरी की ओर आगे जाने पर एक ग्वारिया ने कहा "अरे वैरागी, आगे मत जाओ सिंह खड़ा है" भयभीत उस वैष्णव ने महाप्रभुजी को याद किया और आगे जाने पर उसे एक गाय मिली। परिक्रमा समाप्त करके वह महाप्रभुजी के पास पहुँचा, और अपनी निराशा उनसे कही।

महाप्रभुजी ने सारा विवरण जानकर कहा, "भगवान के दर्शन तो तुम्हें हुए, परन्तु उनकी इच्छा के बिना ज्ञान नहीं मिलता, आस्वादन नहीं हो सका।" महाप्रभुजी ने कृपा कर उसे दर्शन करवाये।

श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी की बैठक

पुष्टिमार्ग के स्तम्भ माने जाते हैं गुसांईजी। आप बड़े विद्वान तथा भावुक थे। आचार्य पद को लेकर घरेलु विवाद चल ही रहा था। आप सर्वथा योग्य थे, परन्तु कुछ वैष्णव इनके बड़े भाई श्रीगोपीनाथजी के सुपुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी को आचार्य पद पर आसीन करना चाहते थे। श्रीकृष्णदासजी, श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी थे। वे प्रभावशाली थे ही, साथ-साथ उनका झुकाव भी पुरुषोत्तमजी के पक्ष में ही था। इसी विवाद को लेकर श्रीकृष्णदासजी ने गुसांईजी के लिए श्रीनाथजी की ड्योढ़ी बन्द कर दी थी। उस समय गुसांईजी चन्द्रसरोवर पर ही विराजते रहे।

श्रीनाथजी के दर्शनों के अभाव में वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। उस व्याकुलता में इनका हृदय ही उमड़ पड़ा। उन्हीं दिनों आपने 'नव विज्ञप्तियां' श्रीनाथजी को सम्बोधन कर लिखीं हैं, लगता है इनका व्याकुल हृदय ही उनमें समाविष्ट हो गया है। राजा बीरबल, गुसांईजी का अनुगत था-जब ड्योढ़ी बन्द की बात उसे पता चली, तो उसने श्रीकृष्णदास को दण्ड देने का प्रस्ताव रखा, परन्तु गुसांईजी ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया।

श्रीसूरदासजी

पुष्टिमार्ग के जहाज श्रीसूरदासजी की भजन स्थली है। 'सूर-कुटी' तथा 'सूर समाधि' दोनों ही श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक के घेरे में स्थित हैं। राज्य सरकार ने इनका पुनः निर्माण करवा दिया है।

सूरदासजी साक्षात्कारी थे । श्रीनाथजी उनके लिए बिल्कुल प्रत्यक्ष तथा प्रकट थे । वे यहाँ निवास करते रहे । जो-जो अनुभूतियाँ उन्हें हुईं, उन्हीं के पदों की रचना कर वे गाते रहे । वही सब पद 'सूरसागर' के रूप में संग्रहीत हुए उपलब्ध हैं । सूरदासजी, श्रीनाथजी की नित्य, सेवा में यहीं से जाया करते ।

श्रीकृष्ण के प्रति उनका दृढ़ अनुराग था । उनके दर्शनों की चाह तीव्रतर होती गई तथा श्रीकृष्ण प्रेम में वे डूबते गये । सूरदासजी ने, ग्वारिया वेश में सुसज्जित, लकुटि से लिपटे खड़े, अपने प्राण सर्वस्व को देखा । उनकी मधुर अवलोकन, मन्द मुस्कान, सभी ने सूर के मन का अपहरण कर लिया । मुकुट की लटक ने जादू-सा कर दिया, श्रवणों में प्रियतम की शत-शत वीणाओं को विनिन्दित करती मधुर स्वर लहरी प्रविष्ट हो गई-ऐसे त्रिभंग सुन्दर की छवि माधुरी का वर्णन करना लेखनी के वश की बात नहीं है ।

निम्न पद में एक गोपी की मनोदशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं -

अब तो प्रकट भई जग जानी ।
वा मोहन सौं प्रीति निरन्तर क्यों निबहेगी छानी ।
कहा कहौं सुन्दर मूरति इन नयनन मांझ समानी ।
निकसत नाहिं बहुत पचिहारी रोम-रोम अरुझानी ।
अब कैसे निरवारि जात है मिल्यौ दूध ज्यौं पानी ।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी ग्वालिनी मन की जानी ।

बेचारी भोली-भाली गोपबाला की मनोदशा देखिये । सौन्दर्य, माधुर्य की अथाह राशि नैनों में समा गई । प्रयत्न करने पर भी उसे निकाल पाने में समर्थ नहीं हो रही । जिस अखण्ड ज्योति को युगों तक प्रयास करने पर भी योगी, मुनि प्राप्त नहीं कर सकते, उसी रूप माधुरी को अनायास प्राप्त कर, ग्वालिनी अपने हृदय से निकालने का प्रयास कर रही है, परन्तु और और उलझती जा रही है । ओह ! भला इन सांवर किशोर से, उस ब्रज बावरी की मनोदशा, कहाँ छिपी रहती, उन्होंने आ उसके जीवन में और सरसता भर दी ।

दैन्य सूरदासजी की सम्पत्ति थी । एक बार श्रीचतुर्भुजदासजी ने कहा सूरदासजी ने भगवत यश बहुत गाया, आचार्य महाप्रभु के यश का वर्णन कहीं नहीं किया । श्रीसूरदासजी ने उत्तर दिया, "मैंने तो सब आचार्य चरण का ही यशोगान किया है 'कछू न्यारो देखतो तो न्यारोई गामतो' पर तुम्हारे सामने कहता हूँ"-

भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो ।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग मांझअन्धेरो ।
साधन और नाहि या कलि में जासों होत निबेरो ।
'सूर' कहा कहुँ द्विविध आंधरो बिना मोल को चेरो ।

अपना अन्तिम समय निकट जान एक दिन मङ्गला आरती के पश्चात् सूर दासजी पारासौली ग्राम आ गये। गुसांईजी ने सब जान लिया। अपने सेवकों से कहा, "आज पुष्टि मार्ग का जहाज जाने वाला है जिसको जो कुछ लेना हो वह ले ले।"

गुसांईजी की आज्ञानुसार सभी सूरदासजी के पास आ गये। राजभोग पश्चात् गुसांईजी भी पधारे। सूर उस समय लीला चिन्तन में मग्न संज्ञा हीन से दीख रहे थे। गुसांई विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी का हाथ पकड़ कर कहा, 'सूरदासजी ! क्या बात है।' सूरदासजी ने नेत्र खोल गुसांईजी को प्रणाम किया तथा निम्न पद गाते-गाते नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

खंजन नैन रूपरस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट श्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फंदाते।
सूरदास अञ्जन गुण अटके न तर अब उड़ जाते॥

उनके जीवन की अनेक घटनाऐं प्रसिद्ध हैं।

श्रीचन्द्रबिहारी, तथा दाऊजी का मन्दिर है। पास ही गन्धर्व कुण्ड है।

आन्यौर

'चन्द्र सरोवर से लभगभ दो मील की दूरी पर गिरिराज तलहटी में यह गाँव अपनी शोभा बढ़ा रहा है। श्रीश्रीनाथजी यहीं, श्रीगिरिराज शिला के नीचे से प्रकट हुए थे।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु बल्लभाचार्यजी की बैठक

यह बैठक श्रीसद्दू पाण्डे नामक वैष्णव के घर में है। उन्हीं के परिवार के लोग यहाँ सेवा पूजा करते हैं। पाण्डे परिवार का सौभाग्य अक्षुण्ण था। उन पर भगवत्कृपा रही है। श्रीमती भवानी, पुत्री नरो तथा श्रीसद्दू पाण्डे का चरित्र परम धार्मिक तथा विलक्षण है। श्रीनाथजी के प्राकट्य का श्रेय मूलतः इस परिवार को ही है। "८४ बैठकन कौ चरित्र"

प्राकट्य प्रसङ्ग (श्रीनाथजी)

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज धर्म प्रचार हेतु भ्रमण कर रहे थे। वे झाड़खण्ड क्षेत्र में पधारे। वहाँ श्रीगोवर्द्धन नाथजी ने दर्शन दिये और कहा, "हमें अमुक स्थान से प्रकट कर सेवा का प्रकाश करो।"

श्रीमदाचार्य कुछ समय बाद ब्रज में इसी उद्देश्य से पधारे। पूर्व मिले

संकेतों के आधार पर, आन्यौर ग्राम में श्रीसद्दू पाण्डे नामक वैष्णव के घर रुके। शरणापत्ति को लेकर परस्पर चर्चा चल पड़ी। इधर श्रीगोवर्द्धन नाथजी बालक रूप में श्रीपाण्डे के घर आकर उनकी पुत्री नरो से दूध की याचना करने लगे। नरो ने उत्तर दिया, "थोड़ी देर ठहरो, महमानों की सेवा कर लूँ।" परन्तु श्रीगोवर्द्धन नाथजी को देरी क्यों कर सहन होती। नरो ने दूध दिया। दुग्ध पान कर श्रीनाथजी जब लौट गये तो महाप्रभुजी ने पूछा, यह बालक कौन था ? नरो ने भोला-भाला साधारण-सा उत्तर दिया, यह पर्वत के देवता 'देव दमन' थे।

श्रीमन्महाप्रभुजी को झाड़खण्ड का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरण हो आया। उसी भावुकता में वे बौरा से गये, शरीर में सभी सात्विक भाव उदय हो गये, पात्र में अवशिष्ट उच्छिष्ट को उन्होंने तुरन्त पान कर लिया।

दूसरे दिन महाप्रभुजी ने कहा, 'तुम लोग ब्रजवासी हो।' 'देव दमन' के प्रति तुम्हारा प्रगाढ़ प्रेम है, अतः तुम्हारे लिये आचार विचार का कोई बन्धन नहीं है। 'देव दमन' की प्राकट्य वार्ता, तुम सविस्तार कहो।

'देव दमन' की प्राकट्य वार्ता, श्रीसद्दू पाण्डे ने, सभी के सामने निम्न प्रकार कही-

एक ग्वारिया था। वह गाय चराया करता था। एक गाय जिसके नीचे पर्याप्त मात्रा में दूध था, नित्य ही उसे भी चराने के लिये ले जाया करता था। एक बार कई दिन लगातार सन्ध्या में दूध न मिलने के कारण उस गाय के स्वामी, एक ब्राह्मण ने ग्वारिया से सारा वृत्तान्त जानना चाहा।

ग्वारिया ने कहा, "मैं तो दूध दुहता नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि यह गैया अकेली ही श्रीगिरिराजजी की एक स्थली पर चली जाया करती है। वहाँ इस गाय का दूध स्वतः ही स्रवित हो जाता है।" सभी ग्रामवासी कौतुहलवश दूसरे दिन इस सबकी सत्यता देखने के लिये गये तो ग्वारिया की बात ठीक निकली। जब वहाँ से शिला हटाई गई, वहाँ से जो ठाकुर स्वरूप प्रकट हुए, वे स्वरूप श्रीनाथजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस भुवन मोहनी छवि को निहार सभी जन चकित विस्मित रह गये। सभी को पुलक रोमाञ्च हो गया।

श्रीमहाप्रभुजी के साथ वे सभी वैष्णव पुनः गये। महाप्रभुजी को सेवा प्रकाश करने का आदेश पहले ही हो चुका था-अतः उन्होंने एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर सेवा प्रारम्भ करवा दी। बाद में सेवा का भार श्रीकृष्ण दास अधिकारी ने सम्हाल लिया। (८४ वैष्णव वार्ता)

श्रीश्रीनाथजी के प्राकट्य सम्बन्धी एक और सरस इतिहास वैष्णव समाज में विख्यात है। उसे भी हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीजी महाराज भ्रमण करते-करते एक बार श्रीगिरिराजजी में गोविन्द-कुण्ड के निकट ठहरे। अयाचक वृत्ति होने के कारण दोपहर में भूखे

ही एक वृक्ष के नीचे पड़े रहे। सन्ध्या में एक ब्रजवासी बालक, दूध का कटोरा लिये इनके पास आकर बोला, "बाबा ! मेरी मैया ने कुछ दूध देकर तुम्हारे पास भेजा है, इसे ग्रहण करो।"

पुरी महाराज उस अत्यन्त सुन्दर श्यामलोज्ज्वल छवि को निहार कुछ खो से गये। दुग्ध पान कर बालक के कहे अनुसार पात्र लौटाने की प्रतीक्षा करने लगे। वह बालक बहुत देर तक न लौटा। इन्हें कुछ तन्द्रा-सी आ गई।

स्वप्न में उसी बालक ने अपना परिचय देकर श्रीगोपाल जी का स्वरूप दर्शाया तथा रहस्य प्रकट किया। यह भी कहा कि यवनों के भय से पुजारी लोग मुझे दबाकर चले गये थे। तुम हमारी सेवा की व्यवस्था करो। श्रीपुरी महाराज ने सेवा प्रारम्भ कर दी। कहते हैं वही गोपालजी श्रीश्रीनाथ स्वरूप ही थे।

(श्री चैतन्य चरितामृत)

उपरोक्त दोनों घटनाओं से यह तो स्पष्ट ही है कि श्रीनाथजी स्वयं प्रकट ठाकुर हैं। उनका प्राकट्य श्रीगिरिराजजी से हुआ है, यह भी निर्विवाद है। श्रीश्रीनाथजी लीला कौतुकी हैं। उनकी अनेक लीलाएँ भक्तों के साथ प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ बनी आज भी हमारा पथ प्रशस्त कर रही हैं। उनके प्राकट्य का कौतुक उनके अपने ही हाथ की बात है। प्राकट्य एक पहेली ही बना रहे यह भी उन्हीं का एक कौतुक है। वे किसी इयत्ता में तो बँधे हैं नहीं। यह भी सम्भव है कि श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी महाराज, दोनों ही को श्रीनाथजी ने अलग-अलग समय में अलग-अलग दर्शन दिये हों। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने इस सम्बन्ध में दोनों ही का प्रशस्ति गान करते हुए कहा है-

अधिधरमनुरागं माधवेन्द्रस्य तन्वंस्तदमल,
हृदयोत्थां प्रेम सेवां विवृण्वन् ।
प्रकटित निजशक्तचा वल्लभाचार्यभक्तचा,
स्फुरतु हृदि स एव श्रीलगोपालदेवः ॥

(गोपाल देवाष्टक)

आइये इस प्राकट्य सम्बन्धी इतिहास को यहीं छोड़ श्रीनाथजी के लीला चरित्रों का गान आस्वादन करें, श्रीनाथजी आपके हैं, हमारे हैं तथा हम सबके हैं।

सङ्कर्षण कुण्ड

यह कुण्ड आन्यौर गाँव से सटा हुआ परिक्रमा मार्ग के दाईं ओर है। उत्तरी तट पर सङ्कर्षण भगवान का मन्दिर है। भक्तप्रवर कुंभनदासजी का इस स्थान से विशेष सम्बन्ध था। उनके दर्शन करने राजा मानसिंह यहीं आये थे। यहीं श्रीकुंभनदासजी की समाधि भी है।

पास ही गिरिराज पर बाजनी शिला हैं, जिसे बजाने से मधुर ध्वनि होती

है । गोविन्द कुण्ड के पश्चिम में श्रीगिरिराज शिला पर श्रीकृष्ण के हस्ताक्षर चिन्ह तथा लकुटि का चिन्ह है। आन्यौर तथा जतीपुरा के मध्य मार्ग में श्रीगिरिराजजी के ऊपर सिन्दूरी शिला है ।

गौरी तीर्थ

आन्यौर से कुछ आगे परिक्रमा के बाँई ओर यह तीर्थ विद्यमान है । श्रीचन्द्रावलीजी गौरी पूजन के मिस श्रीकृष्ण से मिलने के लिये यहाँ पधारती हैं, वे श्रीकृष्ण की अनन्या प्रिया हैं न !

नीप वृक्षों से आच्छादित यह स्थली अत्यन्त रमणीय है ।

अन्नकूट स्थान

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरिबलिमादद् वृहद्वपुः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/24/35)

श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरणा पाकर, श्रीनन्दरायजी तथा अन्य गोपों ने, जो सामग्री इन्द्र पूजा के लिये तैयार की थी, वह सभी श्रीगिरिराज पूजन हेतु समर्पित कर दी । ब्राह्मणों ने यज्ञ तथा स्वस्तिवाचन करवाया ।

पश्चात् सभी ब्रजवासी श्रीगिरिराज की परिक्रमा करने के लिये चल दिये । ब्रजवासियों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा । उन्होंने देखा कि उनका सखा देव रूप में विराजमान होकर उनके द्वारा समर्पित सामग्री को यथावत् रुचि पूर्वक ग्रहण कर रहा है । जहाँ श्रीकृष्ण ने अन्नकूट की सामग्री ग्रहण की, वही स्थली 'अन्नकूट स्थल' नाम से विख्यात है । आज भी उसी तरह यहाँ पूजन की परम्परा चली आ रही है ।

पास ही सद्दू पाण्डे का घर है । श्रीगिरिराज के निकट ही श्रीनाथजी का प्राकट्य स्थल है ।

गोविन्द कुण्ड

अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थ शक्रविनिर्मितं ।
तस्मिन् स्नाने तर्पणे च शतक्रतुफलं लभेत् ॥[2]

(आ० वा०)

---

1. भगवान श्रीकृष्ण गोपों को विश्वास दिलाने हेतु श्रीगिरिराज के ऊपर एक दूसरा विशाल वपु धारण करके प्रकट हो गये, 'मैं गिरिराज हूँ ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे ।
2. अन्नकूट स्थान के निकट ही देवराज इन्द्र द्वारा प्रकाश किया हुआ गोविन्द कुण्ड नामक तीर्थ है । यहाँ स्नान तथा तर्पण करने से शत-शत यज्ञ करने का फल मिलता है ।

इन्द्र पूजन की सम्पूर्ण ब्रज में, घर-घर में सोत्साह तैयारी होते देख बालक कन्हैया के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। विविध पकवान बना ब्रजवासी, घर के देवता को छोड़, देव पूजन करेंगे-यह बात ब्रजवासियों के लिये शोभनीय न लगी। भोले-भाले ब्रजवासियों को नियमादि पूर्वक पूजन के लिये तत्पर देख, श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा से पूछा, "बाबा ! आप लोगों के सामने कौन-सा बड़ा भारी काम है; कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है ? इसका फल क्या है ? किस उद्देश्य से, कौन लोग, किन साधनों के द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं ? आप मुझे अवश्य ही सविस्तार समझाइये।

कन्हैया की बाल सुलभ भोली-भोली बातों के सामने श्रीनन्दरायजी क्या कहते-वे बोले-

"बेटा ! इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के स्वामी हैं। मेघ उन्हीं के अपने रूप हैं और जब वे वर्षा करते हैं तो सभी प्राणियों की जीवन रक्षा होती है। इस यज्ञ से जो कुछ अवशेष रहता है उसी को हम अपने त्रिवर्ग की सिद्धि के लिये प्रयोग में लाते हैं। यह धर्म हमारी कुल परम्परा से चला आ रहा है।"

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा ! प्राणी अपने कर्मानुसार ही पैदा होता है तथा मरता है। मनुष्य अपने स्वभाव के अधीन है। वैश्यों की वृत्ति चार प्रकार की है, परन्तु हम लोग केवल गो पालन ही करते आये हैं। बाबा ! न तो हमारे पास कोई बड़ा राज्य है, जिससे यज्ञादि के प्रयोजन पूरे किये जाएँ। हम लोग तो सदा से बनवासी हैं और पर्वत ही हमारे घर हैं। इसलिए मेरी तो सम्मति है कि इन्द्र यज्ञ के लिए बनी सामग्री से हम श्रीगिरिराज, गौओं और ब्राह्मणों का यजन करें।" श्रीनन्दबाबा तथा सभी अन्य गोपों ने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि कन्हैया के विलक्षण चरित्र से वे सब पहले ही परिचित थे, अतः इन्द्रयज्ञ हेतु एकत्रित सभी सामग्री श्रीगिरिराजजी को सादर-सप्रेम भेंट कर दी गई।

ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेकर गोप तथा गोपिकाऐं भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रृङ्गारादि धारण कर श्रीगिरिराजजी की प्रदक्षिणा के लिए उत्सुक हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने वह सम्पूर्ण सामग्री श्रीगिरिराज के ऊपर दूसरा विशाल शरीर धारण करके आरोग ली। सभी को विश्वास हो गया कि देवता स्वयं प्रकट होकर ग्रहण कर रहे हैं।

इधर इन्द्र को जब यह सब पता चला तो उनसे क्रुद्ध होकर संवर्तक नामक मेघों को ब्रज में घोर वर्षा करने का आदेश दिया। ब्रज में मूसलाधार वर्षा होने लगी। ब्रजवासियों के लिए, अपने ठहरने तथा पशुओं के लिए कोई स्थान

न रह गया। ठंड से वे काँपने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण से अपनी व्यथा कही।

वे बोले, "प्यारे कृष्ण तुम बड़े सामर्थ्यवान हो। तुम्हारे भाग्य से ही हमारी रक्षा हो सकती है। इस सारे गोकुल के एक मात्र तुम्हीं स्वामी हो तथा रक्षक भी हो।"

भगवान श्रीकृष्ण को इन्द्र का घमण्ड चूर-चूर करना ही था, उन्होंने सबके देखते-देखते

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥

(भागवत 10/25/19)

इस प्रकार कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में ही एक ही हाथ से श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्ते के पुष्प को उखाड़ कर हाथ में रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वत को धारण कर लिया।

भगवान ने सभी ब्रजवासियों को गिरिराज पर्वत के नीचे आ जाने को कहा। अपनी कनिष्ठ अङ्गुली पर श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को सात दिन तक धारण किये रखा। इन्द्र भी योगमाया के प्रभाव को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

कुछ वात्सल्य भाव भावित गोपों ने तथा माँ यशोदा ने, सखाओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "अरे बालकों! तुम देख नहीं रहे हो-कन्हैया ने अपनी कनिष्ठ अंगुली पर श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को धारण कर रखा है-तुम लोगों को कुछ विचार नहीं आता क्या।" सखागण बोले, "मैया तू तो सदा से ही भोरी है। देख नहीं रही, हम सबने, लाठियाँ लगाकर श्रीगिरिराज को रोक रखा है, कन्हैया के हाथ पर तो इसका भार तनिक भी नहीं है।" यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराने लगे।

वर्षा के बन्द हो जाने पर, श्रीकृष्ण ने सभी गोपों से अपने सामान, गोधन आदि के साथ बाहर जाने को कहा तथा सभी के सामने गिरिराज पर्वत को पूर्ववत स्थापित कर दिया।

ब्रजवासियों का हृदय प्रेम में सराबोर हो गया। वे श्रीकृष्ण के पास दौड़े आये और अपने कन्हैया को हृदय से लगा लिया, आनन्द और स्नेह से सभी ने दही, चावल आदि से श्रीकृष्ण का पूजन किया। देवता शंख बजाने लगे, गन्धर्वादि ने पुष्पों की वर्षा की।

देवराज ने, भगवान का अभिषेक कर स्तुति की। अभिषेक का जल जहाँ एकत्रित हो गया, जल पूरित वही स्थल, 'श्रीगोविन्द-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया। यह कुण्ड आज भी हमारी श्रीकृष्ण में प्रगाढ़ प्रीति कराने वाला है।

यहाँ श्रीमाधवेन्द्र पुरीजी, श्रीवल्लभाचार्यजी, तथा श्रीविट्ठलनाथजी की बैठकें हैं। श्रीगोविन्दजी, और श्रीश्रीनाथजी के दर्शन हैं। कुण्ड के तट पर अनेक विरक्त महात्मा भजन करते हैं।

ढोका दाऊजी

श्रीगोविन्द कुण्ड से आगे श्रीगिरिराज के ऊपर ही मन्दिर में श्रीदाऊजी विराजमान हैं।

नागाजी की समाधि

श्रीचतुरानन नागा की समाधि है। यहीं श्रीनागाजी का देहावसान हुआ था। यह स्थान गोविन्द कुण्ड से थोड़ा आगे चलकर है।

पूंछरी

श्रीगिरिराजजी के पीछे के हिस्से को पूंछरी कहा गया है। श्रीगिरिराजजी का आकार गौ स्वरूप माना गया है, अतः श्रीराधाकुण्ड श्रीकृष्ण कुण्ड, नेत्र तथा पूंछरी गाँव में पूंछ की भावना की जाती है। जिस प्रकार गौ के लिए पूंछ का महत्त्व है उतना ही महत्त्व इस तीर्थ का है।

पास ही 'नृसिंह टीला', 'नवल कुण्ड', 'अप्सरा कुण्ड' पर 'अप्सरा बिहारी', ठाकुरजी विराजमान हैं।

पूंछरी का लौठा

पूंछरी गाँव से बाहर के मन्दिर में पहलवान मूर्त्ति के आकार का एक स्वरूप पूंछरी का लौठा नाम से विख्यात है। इसे श्रीकृष्ण का सखा मानते हैं।

श्रीराघव पण्डित की गुफा

श्रीगिरिराज की तलहटी में रहकर श्रीराघव पण्डितजी भजन करते थे। गुफा द्वार आजकल बन्द है।

श्रीरामदासजी की गुफा

अप्सरा कुण्ड के पास ही बल्लभ सम्प्रदाय के परम भागवत श्रीरामदासजी भजन करते थे।

सुरभि तथा ऐरावत कुण्ड

एवं कृष्णमुपामन्त्रय सुरभिः पयसाऽऽत्मनः।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः ॥
इन्द्रः सुरर्षिभिः साके नोदितो देवमातृभिः।
अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात्॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/27/22-23)

श्रीकृष्ण की भगवत्ता से इन्द्र लज्जित हो गये। उन्होंने विविध भाँति से भगवानका अभिषेक किया। अभिषेक की वे सभी स्थलियाँ क्रमशः कुण्डों के नाम से प्रसिद्ध हो गईं। तभी से 'सुरभि कुण्ड' तथा 'ऐरावत कुण्ड' विख्यात हो गये।

पास ही कुनवाड़े का तथा श्रीगिरिराजजी को भोग समर्पित करने का स्थान है। यहीं श्रीपरमानन्ददासजी विराजते तथा श्रीनाथजी की सेवा करते थे।

कदम्बखण्डी

यत्र कृष्णस्तु गोपीनां मनोस्याह्लादनंकरोत्।
कदम्बोपरिः संविष्टो मुरलीवादनं शुभम् ॥
गोप्योऽधःस्थल-संस्थास्ता रासक्रीड़नतत्पराः।
यतो कदम्बखण्डाख्यं वनं जातं महद्भुतम् ॥[2]

(भविष्य पुराण)

गिरिराज की तलहटी, गिरि गुफाएँ, गिरिराज की एकान्तिक निकुञ्जें, प्रिया-प्रियतम की विहार विलास लीलाओं से स्पृष्ट हैं, सिञ्चित हैं तथा परिपुष्ट हैं। कदम्ब सौरभ से उन्मादित इन रस बावरों ने ब्रज की प्रत्येक स्थली को अपने मधुर रस से पोषित किया है।

श्रीनाथजी के सेवक सखा भक्तप्रवर श्रीगोविन्द स्वामीजी यहीं निवास करते थे, श्रीगिरिराज के चतुर्थ द्वार पर श्रीगोविन्द स्वामीजी सेवा में विराजते हैं।

(८४ वैष्णव वार्ता)

रुद्र कुण्ड

एकान्त तथा निर्जन स्थली है। श्रीमहादेवजी श्रीकृष्ण दर्शन हेतु यहीं विराजे, अतः यह स्थली, 'रुद्र-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई।

---

1. परीक्षित ! भगवान श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर कामधेनु ने अपने दूध से देव माताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने, ऐरावत की सूँड से लाये हुए आकाश गंगा के जल से, देवर्षियों के साथ, यदुनाथ श्रीकृष्ण का अभिषेक किया और उन्हें गोविन्द नाम से सम्बोधित किया।
2. यही वह कदम्ब वृक्ष समूह का विशेष सघन तथा रमणीक स्थल है। श्रीकृष्ण ने अनेकानेक रस रासलीला विहार में गोपिकाओं सहित यहाँ रमण किया । उनकी नित्य संगिनी वंशी की तान सुन आत्मविभोर ब्रजरमणी वृन्द, विशेष आमन्त्रण पा रस मग्न हो जाती हैं।

पास ही 'हरजी की पोखर' है। अत्यन्त रमणीय स्थली है। यहाँ 'बूढ़े बाबू महादेवजी' के दर्शन हैं।

रुद्र कुण्ड के पास ही श्रीगिरिराजजी का पाँचवाँ द्वार माना जाता है, जहाँ भक्त श्रीचतुर्भुजदासजी सेवा में रत हैं। (८४ वैष्णव वार्ता)

श्याम ढाक

श्याम ढाक के दौना, जा में खावै श्याम सलौना।

यह उक्ति ब्रज में अति प्रसिद्ध है। अनेकानेक श्याम पलाश वृक्षों के झुरमुटों से आच्छादित यह स्थली, श्याम ढाक नाम से प्रसिद्ध है। पूंछरी ग्राम से डेढ़ मील दूरी पर स्थित है।

यहाँ आज भी वर्षा ऋतु में कदम्ब पुष्पों की सौरभ से मन मधुकर बावरा हो जाता है। सरसता, स्निग्धता के वातावरण में अनेकानेक-स्मृतियाँ साकार हो जाती हैं। एकान्त तथा निर्जन यह स्थली श्रीकृष्ण की गो चारण लीलाओं से, सिक्त-सिञ्चित है।

कहते हैं एक बार भोजन करते समय श्रीकृष्ण को दोना की आवश्यकता हुई तो उन्होंने पास ही के एक कदम्ब वृक्ष से एक पत्ता तोड़ लिया, वह दोने के आकार का ही था। उन परम ब्रह्म श्रीकृष्ण की इच्छा से ही बने उस दोने के प्रमाण आज भी आप यहाँ देख सकते हैं।

श्रीनाथजी प्रायः यहाँ खेलने चले आते। एक बार श्रीनाथजी यहाँ पधारे। श्रीगोविन्द स्वामी साथ थे। एक वृक्ष पर बैठकर श्रीनाथजी वंशी बजाने लगे। थोड़ी देर हो गई। इधर मन्दिर में उत्थापन का समय हो गया। श्रीगुसांईजी मन्दिर में पहुँचे। श्रीनाथजी उतावली में वृक्ष से कूद पड़े, उनका पटका एक डाली में उलझकर फट गया। फटा छोर वहीं अटका रह गया और स्वयं श्रीनाथजी मन्दिर में समय पर पहुँच गये। गुसांईजी फटे पटके को देख विस्मित हो गये। गोविन्दस्वामी ने बाद में आकर बतलाया और पटके का फटा छोर सबको वहीं ले जाकर दिखलाया।

श्रीगोविन्द स्वामी जी का भाव सिद्ध था। उन्हीं के साथ खेलने हेतु श्रीनाथजी श्याम ढाक पधारे थे।

यहाँ गोपी तलैया, गोप सागर, जलघड़ा तथा गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी की बैठक है।

जतीपुरा (गोपालपुर)

श्रीगिरिराज की प्रत्येक शिला श्रीकृष्ण स्पर्श से, उनकी लीला से स्पृष्ट है। जहाँ एक ओर आन्यौर ग्राम अनेक लीलाओं से धन्य हुआ है दूसरी ओर जतीपुरा

नामक यह स्थल श्रीनाथजी की अनेक सुरस स्मृतियों को अपने वातावरण में संजोए आज भी वैष्णवों के लिये अत्यन्त पूजनीय बना है।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रधान स्थानों में यह भी एक विशेष स्थान है। श्रीनाथजी, जो 'देव दमन' तथा 'गोपालजी' के नाम से जाने जाते हैं, वे यहीं विराजते थे। यद्यपि यवनों के आक्रमणों के भय से श्रीश्रीनाथजी को श्रीनाथद्वारा ले गये तथापि उनका वही मन्दिर, प्रतीक स्वरूप आज भी हम सभी के लिये प्राचीन स्मृतियों को प्रत्यक्ष कर रहा है।

कौतुक प्रिय श्रीनाथजी के नवीन, कौतुकों से ब्रज-स्थली सदा धन्य होती रही है। लो ! यह नया कौतुक श्रीनाथजी को सूझा। श्रीनाथजी ने आचार्य से कहा, 'मुझे गैया अत्यन्त प्रिय है; मेरे लिये गैया मँगवा दो। आचार्य श्रीमहाप्रभुजी ने कहा ठीक है तथा श्रीसद्दू पाण्डे को यह वृत्तान्त कहा। सुनकर श्रीपाण्डेजी बोले, आचार्य पाद ! यह सब गैया श्रीनाथजी की ही तो हैं, परन्तु फिर भी श्रीनाथजी का आग्रह है तो और गैया अवश्य आएँगी। कहते हैं तभी से श्रीनाथजी को गोपाल कहा जाने लगा। यह सब विचार कर गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी ने बाद में इस स्थली का नाम 'गोपालपुर' बदल दिया।

आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी। उसी समय में श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी, श्रीचैतन्य महाप्रभु जी, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीमन्नित्यानन्दजी, अष्ट छाप के आठ भक्त कवि, षड गोस्वामीगण, मीराबाई, कबीर, तुलसी आदि ने इस धराधाम पर अवतरित होकर, जन-जन में भक्ति का स्रोत उँड़ेल दिया। भक्ति युग की उन्हीं लहरों से बिखरे रस कण आज भी हमारा पथ संचालन कर रहे हैं।

श्रीनाथजी

श्रीनाथजी, अपनी भुवन मोहिनी छवि-छटा का प्रसार कर लाखों भक्तों को अपने रूप-सौन्दर्य से, अपने प्रत्यक्ष दर्शन तथा लीला-माधुरी का आस्वादन कराकर, आकृष्ट करते रहे हैं-कर रहे हैं। श्रीनाथजी की सेवा, उनके प्रति लाड़-चाव का अभीप्सित क्रम जो चल रहा है, वह दर्शनीय तथा आस्वादनीय ही है।

यह बात निर्विवाद है कि श्रीनाथजी का प्राकट्य श्रीगिरिराज कन्दरा से ही हुआ। महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने एक मन्दिर में पधरा कर सेवा प्रारम्भ कर दी। (प्राचीन स्थल आज भी जतीपुरा में विद्यमान है)। औरङ्गजेब के धर्म विरोधी विचारों को देखते हुए, अन्य कई स्वरूपों की भाँति श्रीनाथजी भी स्वेच्छा से बाहर चले गये।

श्रीनाथजी अपने सेवा काल में जहाँ-जहाँ विराजे, वहाँ उनकी चरण चौकियाँ अङ्कित हैं। जतीपुरा तथा 'सतघरा' (मथुरा) में श्रीनाथजी की चरण चौकी विराजमान हैं। श्याम ढाक, गुलाल कुण्ड, टोड की घनो तथा पारासौली ग्राम में श्रीनाथजी की बैठकें अद्यावधि पूजनीय हैं।

श्रीनाथजी माधुर्य तथा लावण्य पूर्ण आकर्षण लिये हुए हैं। इनके श्रीअङ्गों पर विविध चिन्ह तथा अलङ्कार स्वतः ही बने हैं। इनकी पीठ पर शुक, मेष, सूर्य तथा गायों के चिन्ह हैं, ऐसा वार्ता साहित्य से पता चलता है।

श्रीनाथजी का चरित्र बड़ा ही विलक्षण तथा अपनत्व पूर्ण है। वे अपने जनों से प्रत्यक्ष बोलते, उनके साथ खेलते तथा बोलकर अपनी इच्छा अभिव्यक्त करते रहे हैं।

उन्होंने अनेक भक्तों को प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपनी अहैतुकी कृपा का पात्र बनाया है। श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज को जहाँ एक ओर आपने सेवा प्रकाशित करने के लिये आदेश दिया तो दूसरी ओर अकारण कृपालु श्रीनाथजी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी की अगवानी के लिये पर्वत से नीचे उतर आये तथा उन्हें दर्शन देकर अनुग्रहीत किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी महाराज, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीसूरदासजी, श्रीकुंभनदासजी, श्रीगोविन्द स्वामीजी प्रभृति महत्जनों को श्रीनाथजी के प्रकट दर्शन हुए हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी ब्रज भ्रमण करते-करते यहाँ पधारे तो श्रीकृष्ण के अभिन्न कलेवर श्रीगिरिराज के ऊपर जाकर श्रीश्रीनाथजी के दर्शन करने न गये, परन्तु श्रीनाथजी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा उन्हें थी। उसी दिन किसी व्यक्ति ने आकर सूचना दी कि यवनों के आक्रमण का भय है और आप लोग श्रीगोपालजी को लेकर कहीं अन्यत्र चले जाऐं। (कहते हैं गोपालजी स्वयं ही उस स्वरूप में आये) अधिकारियों ने ऐसा ही किया। घट-घट की जानने वाले श्रीनाथजी ने श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की अभिलाषा पूर्ण करनी थी। श्रीमन्महाप्रभुजी कहते हैं-

गोवर्द्धन ऊपरे आमि कभू ना चढ़िव।
गोपाल रायेर दर्शन केमने पाईव॥
एक जन आसि रात्रये ग्रामी के बलिल।
तोमार ग्राम मारिते तुरुकधारी साजिल॥
शुनिया ग्रामेर लौक चिन्तित हईल।
प्रथमे गोपाल लईया गांठुलि ग्रामे थुईल॥

सेई ग्रामे गिया कैल गोपाल दर्शन ।
प्रेमावेशे प्रभु करे कीर्तन नर्तन ॥[1]
(श्री चैतन्य चरितामृत)

दूसरा प्रसङ्ग

श्रीरामानन्द, श्रीवल्लभाचार्यजी के सेवक थे । वे बड़े विद्वान थे । एक बार श्रीरामानन्दजी ने बहुत ही श्रद्धा पूर्वक वल्लभाचार्य जी को अपने यहाँ थानेसर पधारने की प्रार्थना की, श्रीमहाप्रभुजी उनके यहाँ पधारे ।

भोर में ही एक दिन श्रीरामानन्द जी ने अपनी पत्नी से कहा, 'बेगि के, गोबर सकेलि, नांतर वैष्णव उठि के गोबर ले जाईंगे ।' श्रीरामानन्दजी की बात सुनकर श्रीवल्लभाचार्यजी को बहुत कष्ट हुआ । उन्होंने वैष्णव अपराध जान, उन्हें शिक्षा देने हेतु ही उनका परित्याग कर दिया ।

श्रीरामानन्दजी के मन का स्तर गिर गया, परन्तु श्रीनाथजी के प्रति उनकी एक निष्ठा बनी रही । वे जब कुछ ग्रहण करते, श्रीनाथजी को भोग अवश्य समर्पित करते । एक बार वे कहीं जा रहे थे, मार्ग में जलेबी बनती देख वे अपना लोभ संवरण न कर सके । जलेबी मोल लेकर उन्होंने श्रीनाथजी के लिए समर्पित की । श्रीनाथजी ने जलेबी स्वीकार कर लीं ।

श्रीमन्महाप्रभुजी जब अपरस में श्रीनाथजी के पास पधारे, तो जलेबी देख बोले, "लाला यह कहाँ ते लायो है ।" श्रीनाथजी ने कहा, "श्रीरामानन्दजी ने भोग में धरीं सो मैंने आरोग लईं ।" आचार्य श्री ने कहा, "लाला आप जानो नाओ, हमने तो उनको परित्याग कर दियो है ।" श्रीनाथजी बोले, "सो तो ठीक है । परित्याग तो तुमने कियो है, मैंने नहीं । मैं तो वचन बद्ध हूँ । एक बार जाकूँ ब्रह्म सम्बन्ध कर आप मेरे सम्मुख ल्याओगे मैं वाय न छोड़ुंगो । मैंने तो अपनी आन राखी है ।"

ऐसे रहे हैं श्रीनाथजी के चरित्र । श्रीनाथजी तथा गोविन्द स्वामी में अनन्य मैत्री थी । वे साथ-साथ खेलते, खाते तथा बाहर घूमने जाते । एक बार गोविन्द स्वामी ने रसोई वाले भीतरिया से कहा, "श्रीनाथजी के भोग से पहले मुझे दिया करो" भीतरिया को ठाकुर श्रीनाथजी के प्रति अवहेलना का भाव ठीक न लगा । उन्होंने गुसांईजी से जाकर कहा, "महाराज ! गोविन्द का मस्तिष्क ठीक नहीं है । मुझे कहते हैं कि श्रीनाथजी से पहले भोजन उन्हें दिया करूँ ।" गुसांईजी

1. मैं गोवर्द्धन के ऊपर कभी न चढ़ूँगा परन्तु श्रीगोपालजी के दर्शन फिर किस प्रकार से सुलभ हो सकेंगे । उसी दिन रात्रि में किसी ने आकर कहा कि ग्राम पर यवन चढ़ाई करने वाले हैं । ग्राम के लोग चिन्तित हो गये । श्रीनाथजी को लेकर गाँठौली ग्राम चले गये । वहाँ जाकर महाप्रभु ने दर्शन किये तथा नृत्य और कीर्तन करने लगे ।

इस रहस्य को समझ गये। उन्होंने सभी लोगों के सामने यह सब प्रकाशित करने के लक्ष्य से गोविन्द स्वामी को बुलाकर इसका कारण जानना चाहा। गोविन्द स्वामीजी ने कहा, "श्रीनाथजी को भोग पहले धरें, तो वे जल्दी-जल्दी स्वयं पाकर, मेरे पास आकर कहें, कि 'तू जल्दी कर, ओर मेरे सङ्ग खेलवे कूं चल।' न उठूँ तो च्यौटि भरें, तो मुझे बीच में ते उठनो परै है।"

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने यह सब विचार कर गोविन्द स्वामी के लिए श्रीनाथजी के साथ-साथ प्रसाद पाने की व्यवस्था करवा दी थी।

श्रीनाथजी के ऐसे अनेक चरित्र विख्यात हैं।

श्रीनाथजी के कीर्तनियाँ

श्रीनाथजी की सेवा प्रारम्भ हो गई। उसके लिए अन्य सब व्यवस्था अभी जुटानी थी। श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी धर्म प्रचारार्थ चले गये।

श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी ने चार श्रीमहाप्रभुजी के और चार अपने शिष्यों को श्रीनाथजी की अष्ट प्रहर सेवा में नियुक्त कर दिया। वे नित्य ही जिस लीला का आस्वादन करते, उसे लेखनी बद्ध कर लेते। पुनः श्रीनाथजी को जाकर मन्दिर में सुनाते। श्रीनाथजी प्रकट होकर उनसे वार्ता करते थे, यह सब छिपा नहीं है। वे सभी आस-पास के क्षेत्र में निवास करते थे, तथा श्रीनाथजी की सेवा में बारी-बारी से उपस्थित रहते थे। ये आठों कीर्तनियाँ श्रीनाथजी को पद सुनाकर प्रसन्न होते हों, इतना ही नहीं, प्रत्युत श्रीनाथजी भी इनके पद सुनने को लालायित बने रहते। यहाँ तक कि पद बिना सुने श्रीनाथजी भोजन ही न आरोगते, शयन न करते। अपने जनों को आनन्द प्रदान कर श्रीनाथजी भी सुख लेते रहे हैं।

श्रीकुंभनदासजी

एक बार गुसांईजी यात्रा के लिए प्रस्थान करने लगे तो कुंभनदासजी को बुलाकर पूछा, "हमारे साथ चलोगे।" यह बात कुंभनदासजी को अखरी क्योंकि श्रीनाथजी की सेवा में वे इतने सजग रहते थे कि उन्हें सेवा से वंचित होना सुहाता ही न था। गुरु आज्ञा थी कैसे टालते ? कुछ चुप हो उत्तर दिया, 'प्रभो ! आज्ञा होगी तो अवश्य चलूँगा।' श्रीनाथजी की सेवा से अलग रहने का विचार भी उन्हें सालने लगा, वे उदास हो गये। श्रीनाथ जी के सामने भाव-विभोर हो वे गाने लगे-

किते दिन ह्वै जु गए बिन देखे।
तरुन किशोर रसिक नन्द नन्दन कछुक उठत मुख रेखे॥

वह शोभा वह कान्ति वदन की कोटिक चन्द विशेखे ।
वह चितवन वह हास मनोहर वह नटवर वपु भेखे ॥
स्यामसुन्दर संग मिलि खेलन की आवत जिय अपेखें ।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिन जीवन जन्म अलेखें ॥

वे अपने को सम्हाल न सके, श्रीनाथजी का वियोग उन्हें क्षण भर के लिए भी सह्य न हुआ । वे उनकी रूप माधुरी पान किये बिना नहीं रहना चाहते थे । गुसांईजी ने उनकी मनोदशा देख उन्हें ले चलने से मना कर दिया ।

श्रीनाथजी ने पुकार सुन ली । कृपावश अपनी सेवा में ही रखा । रूप सौन्दर्य की अनगिन लहरियों को सम्हाल पाने में असमर्थ से हो कुम्भनदासजी की वाणी मुखरित हुई और उन्होंने गाया-

'छिन -छिन बानिक औरहि और'

उन्होंने देखी नवीनता से परिपूर्ण छटा, रूप की नित-प्रति बदलती माधुरी का आस्वादन कर, किस छवि का वर्णन करें । एक ही छवि तरङ्ग से मुग्ध हो, तन्मयता से किञ्चित् संज्ञा प्राप्त कर, जब पुनः छवि निहारी, तो माधुरी कुछ और ही थी । बस, और-और-और ही कहते बना । 'दिने-दिने नवं नवं' नहीं 'क्षणे क्षणे नवं नवं हैं' यह नटवर श्याम सुन्दर ।

इसी प्रकार श्रीनाथजी की नित-प्रति सेवा करते हुए श्रीकुंभनदासजी 'आन्यौर' गाँव में सङ्कर्षण कुण्ड के पास एक पीपल के पेड़ के नीचे सदा सदा के लिए श्रीनाथजी की नित्य सेवा में प्रवेश कर गये ।

श्रीसूरदासजी

'बाल्मीक तुलसी भए उद्धव सूर शरीर'

श्रीसूरदासजी उद्धवजी के अवतार माने जाते हैं । इन्हें नेत्रहीन मानना अपने को आध्यात्मिक जगत से अछूता ही मानना होगा । सूरदासजी के वे नेत्र थे जो हमारे नहीं हैं । हम अपने नेत्रों से वह देखते हैं, जो देखने योग्य नहीं है और सूरदासजी ने देखीं श्रीनाथजी की दिव्य तथा चिन्मयी लीलाऐं जिन्हें देख वे धन्य हो गये । देदीप्यमान सूर्य की भाँति हमारे लिए प्रकाश-स्तम्भ हो गये ।

सूरदासजी के नित्य नवीन पदों का संग्रह 'सूर सागर' उनकी अनुभूतियों का संग्रह ही है । श्रीवल्लभाचार्यजी ने कृपा की तथा भगवद् गुण-गान का सामर्थ्य प्रदान किया । सूरदासजी ने वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य का जितनी सजीवता से चित्रांकन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है । इतना ही नहीं श्रीनाथजी उनके सेव्य थे, उनके साथ सूरदासजी की अनेक सरस अनुभूतियाँ

हैं, वही अनुभूतियाँ सूरदासजी की रागिनी में बद्ध हुईं, श्रीनाथजी ने स्वीकार की हैं। वही सरस अनुभूतियाँ पुनः संग्रह के रूप में हमारे सामने प्रकट हो गईं। उन्होंने श्रीनाथजी के साक्षात् दर्शनकर कहा-

देख री नवल नन्द किशोर।
लकुट सों लपटाय ठाड़े युवति जन मन चोर॥
चारु लोचन हँसि विलोकनि देखि के चित चोर।
मोहनि मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर॥
स्रवन धुनि सुनि नाद मोहत करत हिरदै फोर।
सूर अङ्ग त्रिभङ्ग सुन्दर छवि निरखि तृण तोर॥

माधुरी छवि, लकुट सों लपटाए, चञ्चल नेत्र, हास पूर्ण मुस्कान, मुकुट की लटकन, सभी ने सूरदासजी के मन का अपहरण कर लिया।

सूरदासजी जो देखते वही गाते थे। नित्य का यह क्रम चलता था। उनके पदों में रूप वर्णन देख सभी चकित विस्मित रह जाते। एक बार कौतुक वश यह सोचकर कि सूर वास्तव में सब अनुभव कर गातें हैं, अथवा कोई उन्हें श्रृंगार वर्णन कर देता है, उसी को पद बद्ध कर गा देते हैं। ऐसा प्रश्न उठा! पुजारी ने श्रीनाथजी का बहुत हल्का सा केवल पुष्पों से ही श्रृङ्गार किया। जब सूरदासजी दर्शन करने पधारे तभी दर्शन के लिए पट खोले। दर्शन कर सूर खड़े रह गये। पुजारी ने पूछा सूरदासजी, "आज का श्रृङ्गार कैसा है?" पहले तो सूरदासजी चुप रहे, फिर ठहाका मारकर हँसे और गाया-

'आज भए हरि नंगम नंगा।'

पद सुनकर सभी वैष्णव स्तब्ध रह गये। श्रीसूरदासजी ने अपना सर्वस्व श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित कर दिया। वे अन्तिम दिनों तक पारासौली ही रहते रहे। वहीं उनकी भजन कुटी तथा समाधि है।

अन्तिम समय में श्रीगोसांईजी ने पूछा, "सूर! चित्त वृत्ति कहाँ है।" उन्होंने गाया-

'खंजन नैन रूप रस माते।'
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।

गोसांईजी ने कहा, ओह! पुष्टिमार्ग का जहाज चला गया।

श्रीपरमानन्ददासजी

आप कन्नौज के ब्राह्मण परिवार से थे। एक बार प्रयाग गये, श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के एक सेवक ने महाप्रभुजी के पास पहुँचा दिया। आचार्यजी

ने कृपा कर कहा, 'कुछ लीला वर्णन करो।' आप बोले, मैं कुछ समझता नहीं। कृपा कर महाप्रभुजी ने दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई। बस शक्ति का सञ्चार हो गया-श्रीश्रीनाथजी की सेवा में पहुँच गये।

श्रीनाथजी के दर्शन कर गाया-

लाल नेंक टेकहु मेरी बहियाँ।
औघट घाट चढ़यो नहिं जाई, रपटति हों कालिन्दी महियाँ॥
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन देखि रूप ग्वालिनी अरुझानी।
उपजी प्रीति काम अंतर गति तब नागर, नागरि पहचानी॥
हँसि ब्रज नाथ गह्यो कर पल्लव जल भरी गगरी गिरन न पावै।
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमलनयन तन परस्यो भावै॥

"परमानन्ददासजी इहलोक में पुरुष देह से सखा तथा सिद्ध देह से गोपी भाव भावित हो गोपी प्रेम का रसास्वादन करते रहे। घाट से जल भरी गगरी लेकर कैसे चढ़े ग्वालिनी, जब तक श्याम सुन्दर अपनी भुजा का सहारा न दें, हँसकर प्रियतम ने कर पकड़ा रस समुद्र उमग पड़ा। रस घट पूरित वह ग्वालिनी प्रेम मद में छकी सी, भूली भटकी सी, रसीले भावों में खो गई।"

श्रीकृष्ण के लावण्य, माधुर्य की बात ही क्या कहें ? 'साक्षात् मन्मथ-मन्मथः श्रीकृष्ण, गोपी-प्रेम में लुट गये। यह देख परमानन्ददास जी ने गाया-

कौन रस गोपी लीनों घूट।
मदन गोपाल निकट कर पाये प्रेम काम की लूट॥
निरख स्वरूप नन्दनन्दन को लोक लाज गई छूट।
परमानन्द वेद सागर की मर्यादा गई टूट॥

वेद सागर की मर्यादा, गोपी समूह की प्रीति-सरिता में बह गई। इतना ही नहीं रास रस समुद्र में अवगाहन कर अनेक रत्नों का संचय किया उन्होंने। श्रीनाथजी को रिझाना ही उनका जीवन था।

कहते हैं एकबार इनका पद 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे', सुनकर महाप्रभुजी तीन दिन तक इसी तन्मयता में रहे।

इसी प्रकार श्रीनाथजी को रिझाते-रिझाते सुरभि कुण्ड के तट पर इन्होंने नित्य लीला में प्रवेश किया।

श्रीकृष्णदासजी

श्रीवल्लभाचार्यजी विश्राम घाट पर बैठे थे। इधर से श्रीकृष्णदास घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। महाप्रभुजी ने देखा, संस्कारी जीव है। पास बुलाया, सब

वृत्तान्त जानकर दीक्षा दी । श्रीहरि की लीला स्मरण हो आई । श्रीनाथजी की सेवा में आ गये ।

श्रीनाथजी, श्रीकृष्णदासजी की सेवा से कितने प्रसन्न थे कि एकबार इन्होंने पद गाया-

'श्रीवृषभानु नन्दिनी नाचत गिरधर संग ।'

श्रीनाथजी तथा स्वामिनीजी नृत्य करने लगे ।

सूरदासजी सदा श्रीकृष्णदासजी से कहा करते, 'तुम्हारे पदों में हमारी छाप मिलती है ।' कोई एक ऐसा पद बनाओ जो बिल्कुल ही नया हो । कृष्णदासजी ने एकान्त में पद की तीन पंक्तियाँ तो लिख लीं; पर, पद आगे न चला । पद को अधूरा ही छोड़ आप प्रसाद पाने चले गये । श्रीनाथजी ने आकर आगे की पंक्तियाँ स्वयं लिख दीं । श्रीकृष्णदासजी ने वह पद सूरदासजी को सुनाया-

आवत बने कान्ह गोप बालकन संग नेचुकी खुर रेणु छुरित अलकावली ।
भौंह मन्मथ चाप वक्र लोचन बान सीस सोभित मत्त मयूर चन्द्रावली ।
उदित उडुराज सुन्दर सिरोमणि वदन निरखि फूलो नवल जुवती कुमुदावली ।
अरुण सकुच अधर बिम्बफल हंसति कहति कछुक प्रकटित होत कुंददसनावली ।
श्रवण कुण्डल भाल तिलक बेसर नाक कण्ठ कौस्तुभ मणि सुभग त्रिवलावली ।
रतन हाटक खचित पुरसि पदिकनि पाँति बीच राजत सुभ पुलक मुक्तावली ॥

यहाँ तक सुनकर सूरदासजी चुप रहे, पर जब आगे की तुक गाई तो समझ गये ।

वलय कंकण बाजूबंद शोभित, आजानु भुज मुद्रिका कर दल विराजत नखावली ।
करतल मुरलिका मोहित अखिल विश्व गोपिका जन मसि ग्रसित प्रेमावली ।
हृदय कृष्णदास गिरिवरधरणलाल की चरण नख चन्द्रिका हरति तिमिरावली ॥

सूरदासजी बोले, 'मेरा तुमसे वादा था तुम्हारे हिमायती से नहीं ।'

ऐसे ही श्रीकृष्णदासजी के साथ प्रकट होकर श्रीनाथजी ने अनेक लीलाएँ कीं ।

एकबार किसी कार्य से आप आगरा गये । वहाँ नर्तकी को मुधर कण्ठ से गाते देखा । रुक गये, पास जाकर बोले, "मेरा श्याम, राग का बड़ा रसिक है, उसको रिझाने चलोगी ।" वह सहमत हो गयी । कृष्णदासजी उस नर्तकी को साथ ले आये । श्रीनाथजी के सम्मुख करते हुए बोले, "पत्र, पुष्प तथा फल से रीझने वाले नवल रसिक ! यह जीवित उपहार स्वीकार करो ।" उस नर्तकी ने गाया-

मो मन गिरधर छवि पर अटक्यो ।
ललित त्रिभंगी अंगनि पर चलि गयो तहांई ठटक्यो ॥

सजल श्याम घन चरण लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास कियो प्राण निछावर यह तन जग सिर पटक्यो ॥

श्रीनाथजी अपने प्रेमी द्वारा लाये उपहार को क्यों स्वीकार न करते। वे रीझ उठे-और उसे अङ्गीकार कर लिया। यह पद गाकर जैसे ही नर्तकी ने सिर उठाया तो सदा-सदा के लिये वह श्रीनाथजी के पास चली गयी।

कृष्णदासजी आजीवन श्रीनाथजी की सेवा में रत रहे। एकबार गिरिराज तलहटी में एक कुँआ बनवा रहे थे-उसमें झाँकने लगे उसी में गिर गये और नित्यलीला में प्रवेश कर गये। यह 'विल्छू वन' में रहते थे, इनकी स्मृति स्वरूप एक चबूतरा वहाँ बना हुआ है।

श्रीनन्ददासजी

निकले थे रणछोड़जी के दर्शन करने, आ पहुँचे गोकुल ग्राम। श्रीगुसांईजी ने बुलावा भेजा, आये और शरणापन्न हो गये। श्रीनवनीत प्रियाजी के दर्शन कर, श्रीगोवर्द्धन में श्रीनाथजी की सेवा में आ, मानसी गङ्गा के तट पर निवास करने लगे।

एक बार तुलसीदास जी इनसे मिलने ब्रज में आये तो कहने लगे, "भैया ! गिरि रुचे तो चित्रकूट रहो, ग्राम रुचे तो अयोध्या, पुरी रुचे तो काशी रहो तथा वन रुचे तो दण्डकारण्य रहो, श्रीरामजी ने अनेक धाम पवित्र किये हैं। हमारे सङ्ग चलो।"

श्रीनन्ददासजी ने अपनी निष्ठा कही और बोले-

जो गिरि रुचे बसो गोवर्द्धन, ग्राम रुचे तो बसो नन्दग्राम।
नगर रुचे तो बसो श्रीमधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम ॥
सरिता रुचे तो बसो यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
नन्ददास कानन रुचे तो बसो भूमि वृन्दावन धाम ॥

यह तो थी उनकी नाम, रूप, धाम तथा इष्ट के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा।

वे सदैव श्रीकृष्ण रूप माधुरी का आस्वादन करते तथा श्रीनाथजी की सेवा में पद गान करते। एक बार श्रीकृष्ण की मधुर लीला का आस्वादन कर आपने गाया -

मेरी री बगर में आवत छवि सों कमल फिरावत।
औरन सौं बतरावत मो तन चितवत चतुर परोसन देख-देख मुस्कावत ॥
नयनन मनुहार करत बैनन समुझावत नेह जनावत भौंह चढ़ावत।
नन्ददास प्रभु सौं स्नेह लोक लाज बाढ़ी कैसे के धीरज आवत ॥

इन लीला बिहारी की रूप छटा में मतवाली ग्वारिन कैसे धैर्य रखे, बात कहीं तथा दृष्टि कहीं। अड़ोस-पड़ोस में चर्चा होने लगी। नयन संकेतों से, मधुर बतरान से स्नेह दर्शाते, प्रणयी रिझवार ने अपनी लीला माधुरी में सराबोर कर दिया। उन्हीं के रूप में मदमाती बाला को लोक लाज ही कैसी ?

श्रीनाथजी इनके इष्ट थे, उनकी सेवा में इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। अनेक लीला चित्र इन्होंने अनुभव कर प्रस्तुत किये हैं। एक जगह कह रहे हैं-

है काहू को ढोटा स्याम सलोने गात।
आई हूँ देख खिरक ठाड़ो न कछुक कहन की बात॥
कमल फिरावत नैन नचावत मोतन मुरि मुस्कात।
छवि के बल जग जीत गर्व भर्‌यो मैन मान्यौ इतरात॥
नखसिख रूप अनूप छवि कवि पै वरन्यो न जात।
नन्ददास चातक की चोंच पुट सब घन कैसे समात॥

अभी हाल ही में खिरक में खड़े अपने प्रियतम को देखा। हाथ में कमल लिये, चञ्चल चितवन से उसने मेरी ओर देखा। ओह ! रूप सौन्दर्य को देख लगता है, जैसे कामदेव ही चञ्चल हो उठा हो। ऐसी रूप माधुरी का आस्वादन कर कोई क्या कहता ? कह भी कोई कितना सकेगा ?

'रूप मञ्जरी' उनकी एक परम मित्र थीं। अकबर के दरबार में वह दासी थीं, कहते हैं अकबर भी एकबार इनके पद की पंक्ति 'नन्ददास गावे तहाँ निपट निकट देखो' सुनकर इनके दर्शन करने आया था।

मनसा देवी के मन्दिर के पास पीपल के पेड़ के नीचे आप निवास करते थे, वहीं निम्न दोहे को कह सदा-सदा के लिये नित्यलीला में प्रवेश कर गये-

मोहन प्रिय की मुसकनि, ढुलकनि मोर मुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की॥

श्रीचतुर्भुजदासजी

ये श्रीकुम्भनदासजी के पुत्र थे। जिस दिन श्रीनाथजी ने कुम्भन दासजी को चतुर्भुज स्वरूप में दर्शन दिये, उसी दिन 'जमनावतो' ग्राम में आपका जन्म हुआ। बचपन से ही भक्तिमय वातावरण में पले। श्रीकुम्भनदास जी ने बालपन में श्रीगुसांईजी से ब्रह्म सम्बन्ध दिलवा दिया।

बड़े होकर श्रीनाथजी की सेवा में आ गये। एक बार श्रीकुम्भनदासजी तथा चतुर्भुजदासजी दोनों ही अपने ग्राम में अपने घर में बैठे थे। श्रीनाथजी के मन्दिर के दीपक का प्रकाश झरोखे में छनकर दिखलाई दे रहा था। लीला रस में मग्न श्रीकुम्भनदासजी ने उस दीपक की किरणों को देखकर गाया-

"वह देखो बरत झरोखन दीपक-
हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी ।"

अगली तुक में श्रीचतुर्भुजदासजी ने गाया-

"सुन्दर वदन निहारन कारन, राखे हैं बहुत जतन कर प्यारी"

यह सुनकर कुंभनदासजी को बहुत सन्तोष हुआ और चतुर्भुजदासजी की भक्ति भावना का आभास मिल गया ।

इनकी भक्ति सख्य भाव की थी । श्रीनाथजी तथा इनकी प्रगाढ़ मैत्री थी ।

एक बार श्रीनाथजी इन्हें किन्हीं ब्रजवासी के यहाँ माखन चोरी के लिए ले गये । श्रीनाथजी ने खूब माखन खाया । इतने में गृहस्वामिनी आ गई । उसे दीखे चतुर्भुजदासजी ही । श्रीनाथजी भाग गये । गोपिका ने चतुर्भुजदासजी को पकड़ कर मार लगाई । चतुर्भुजदासजी ने श्रीनाथजी से कहा, 'मौकूं तो तुमने अच्छी मार खवाई' श्रीनाथजी बोले, "सामर्थ्य होवती तो भाज आमतो ।"

श्रीनाथजी की नित्यप्रति और, और रूप माधुरी का पान कर आप कहते हैं-

आज और काल्ह और दिन दिन प्रति और,
और देखिये रसिक गिरिराज धरन ।
छिन प्रति छिन नव छवि वरनै सो
कौन कवि नित श्रृंगार बागे बरन बरन ॥
शोभा सिंधु अंग-अंग मोहन कोटि अनंग
छविकी उठत तरंग बिस्व को मनहरन ।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर को स्वरूप सुधा
पान कीजे रहिये सदा ही सरन ॥

यह सुन एक वैष्णव ने गुसांईजी से कहा, 'महाराज ! भगवत् लीला तो नित्य और सर्वत्र है फिर चतुर्भुजदासजी ने 'और' 'और' क्यों गाया ।

गुसांईजी ने उत्तर दिया, "भगवत् लीला की यही विलक्षणता है कि वह नित्य होते हुए भी क्षण-क्षण में नूतन ही लगती है तथा नूतन रुचि उपजाती है ।"

शयन की एक झाँकी कर चतुर्भुजदासजी स्तब्ध रह गये तथा उन्होंने श्रीनाथजी को सुनाया-

रजनी राज लियो निकुञ्ज नगर की रानी ।
मदन महीपति जीति महारण श्रम जल सहित जँभानी ॥
परम सूर सौन्दर्य भ्रकुटी धनु अनियारे नयन बान संधानी ।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरधर रस संपति विलसी ज्यों मन मानी ॥

विलास भरी रात्रियों में परिश्रान्त हो किशोरी श्रीराधा के मुख पर स्वेद बिंदु झलक उठे। नयन कुछ-कुछ निमीलित हो गये। इतना ही नहीं मदालस से कोमल वपु कुछ शिथिल सा हो गया। अवश्य ही चञ्चलता तथा चपलता अपने उत्कर्ष का जयघोष कर शिथिल हो गई होगी। कितनी सजीव और पूर्णता है चतुर्भुजदासजी के पदों में।

एक बार गुसांईजी बाहर यात्रा के लिए गये। उनके पुत्र श्रीगिरधर जी ने श्रीनाथजी को मथुरा में अपने निवास पर पधराया। चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजी के विरह में सुध बुध खोकर पद गाया करते। श्रीनाथजी भी नित्य उन्हें दर्शन देने गिरिराज पधारते। एक दिन अत्यन्त कातर होकर चतुर्भुजदासजी गा रहे थे-

'गोवर्द्धन वासी सांवरे लाल तुम, बिन रह्यो न जाय हो।'

श्रीनाथजी से इनकी दशा देखी न गई। उन्होंने श्रीगिरधरजी को तुरन्त श्रीगिरिराज चलने की प्रेरणा दी और सुबह का श्रृङ्गार भोग मथुरा में कर, राजभोग के लिए श्रीगोवर्द्धन में ही पधारे। कितनी कृपा थी श्रीनाथजी की श्रीचतुर्भुजदासजी पर इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

वे 'यमुनावतो' में अपने निवास स्थान पर थे। गुसांईजी के देहावसान का समाचार सुनकर बहुत दु:खी हुए, वे श्रीनाथजी के सामने आये और गुसांईजी की स्तुति करने लगे। स्तुति के पद गाते हुए रुद्र कुण्ड पर ही एक इमली के वृक्ष के नीचे अपनी पार्थिव देह को त्याग, सदा के लिए नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

श्रीछीत स्वामी

मथुरा के चौबे जन्म से ही नटखट थे। श्रीगुसांईजी की परीक्षा लेने आये स्वयं ही ठगे गये। गुसांईजी के चमत्कार पूर्ण चरित्र की चर्चा चारों ओर फैल रही थी। श्रीछीतू चौबे ने सुना 'श्रीगुसांईजी का जादू सभी पर चढ़ जाता है।' एक खोटा रूपया तथा सूखा नारियल ले गुसांईजी के पास पहुँचे। गुसांईजी ने कहा नारियल फोड़ो, जब नारियल फोड़ा गया तो उसमें गिरी निकली, रूपया भी खन्न से बोला।

भई अब गिरधर सों पहचान।
कपट रूप धरि छलबे आये, पुरुषोत्तम नहिं जान॥
छोटो बड़ो कछु नाहिं जान्यो, छाय रह्यो अग्यान।
छीत स्वामी देखत अपनायो विट्ठल कृपा निधान॥

कुछ समय बाद स्थायी रूप से गोवर्द्धन आ गये। पूंछरी में श्याम तमाल के नीचे रहने लगे। श्रीनाथजी को नित्य पद सुनाने जाते।

छीत-स्वामी बड़े ही निस्पृह थे। राजा बीरबल के पुरोहित होने के नाते इनके परिवार पोषण हेतु राजा बीरबल की ओर से वृत्ति की व्यवस्था थी। एकबार जब ये वृत्ति लेने गये तो बीरबल ने गुसांई श्रीविट्ठलनाथ जी के लिये कुछ हल्के शब्दों का प्रयोग किया। छीत स्वामी गुसांईजी को प्रत्यक्ष भगवान स्वरूप मानते थे। छीतस्वामी ने आजीवन बीरबल से वृत्ति लेनी बन्द कर दी।

श्रीछीतस्वामी की गुरुनिष्ठा सराहनीय थी। बीरबल भी श्रीगुसांईजी के सेवक थे-सो एकबार उनके बुलाने पर आगरा गये वहाँ एक पद पढ़ा-

जे वसुदेव किये पूरन तप, तेई फल फलित श्रीवल्लभदेह।
जे गोपल हुते गोकुल में, तेई अब आनि बसे घर गेह॥
तै वे गोप वधू हुती ब्रज में, जे अब वेद रिचा भई एह।
छीतस्वामी गिरधरन श्रीविट्ठल वेई एई, एई वेई, कछू न संदेह॥

बीरबल बोले, "इतना भी तौ बढ़ि कै कहना क्या लाजम ?" छीत स्वामी को बहुत दुःख हुआ और जो कुछ भेंट राजा बीरबल ने उन्हें दी थी-सभी वेश्याओं में यह कहकर बाँट दी कि यह धन वैष्णव सेवा योग्य नहीं है-क्योंकि बीरबल की निष्ठा में कमी है।

काव्य प्रतिभा इनमें सहज थी। इनकी श्रीनाथजी के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा थी। अनेक लीलानुभूतियों को इन्होंने सरस पदों के रूप में बद्ध किया है। एक बार इन्होंने श्यामसुन्दर को प्रियाजी सहित एक सघन कुञ्ज में देखा। भोर का समय था। रूप माधुरी का पान कर मत्त हो गये। "पाग ढीली है, माला शिथिल हो रही है, टूटी माला तथा डगमगाती चाल से आते देख लगा जैसे रात्रि विहार में मग्न युगल बावरे, किसी निकुञ्ज में ही शयन के अङ्क में विश्राम करते रहे हैं।" उसी को देख इन्होंने गाया-

भोर भए नव कुञ्ज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धन धारी।
लटपटी पाग मरगजी माला सिथिल अङ्ग डगमग गति न्यारी॥
बिनु गुन माल विराजत उर पर नख छत द्वैज चन्द अनुहारी।
छीत-स्वामी जब चितये मो तन तब हौं निरखि गयो बलिहारी॥

ब्रज के प्रति इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। यहाँ रहते हुए, दान केलि, मान केलि, गोचारण, पनघट तथा प्रियाजी सहित रास विलास सभी की कामना कर, इन्होंने अनुभूति की तथा उसी को चित्रांकित कर, हमारे लिए मार्ग प्रशस्त किया। एक जगह लिखते हैं-

अहो विधना तो पे अचरा पसार मांगों,
जनम जनत दीजो याही ब्रज बसिबो।

अहीर की जाति समीप नन्द घर,
घरी घरी घनश्याम मुख हेरि हेरि हँसिबो।
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिन्ह मांहि
झकझोरन अंग अंग को परसिबो ।
छीत स्वामी गिरिधरण श्रीविट्ठल,
शरद रैन रस रास को विलसिबो ॥

सुध बुध बिसराये, श्रीगिरिराज की निकुञ्जों में डोलते रहते । पूंछरी में अप्सरा कुण्ड के निकट ही आप गिरिराज तलहटी में, एक तमाल वृक्ष के नीचे, लीला में प्रवेश कर गये ।

श्रीगोविन्द स्वामी

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के अलौकिक चरित्र तथा भगवद् प्राप्ति से गोविन्द स्वामी पहले ही परिचित हो चुके थे, दर्शन करने जब गोकुल पधारे तो-श्रीगुसांईजी को श्रीयमुना तट पर, नित्य संध्या करते देख, गोविन्द स्वामी आश्चर्यचकित हो बोले, "आप तो कपट रूप दिखलाते हैं । साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम होकर भी वेदोक्त तर्पण आदि कर रहे हैं । साधारण जगत इस सबसे भ्रमित ही होगा ।"

श्रीगुसांई ने उत्तर दिया, "भैया ! भक्ति मार्ग, फूल का वृक्ष है तथा कर्म मार्ग, काँटो की बाड़, कर्म मार्ग की बाड़ के बिना भक्ति मार्ग के पुष्प की रक्षा ही नहीं होती ।"

मन तो गुसांईजी को समर्पित कर ही चुके थे, तन भी समर्पित कर दिया । श्रीगुसांईजी की आज्ञा से श्रीनाथजी की सेवा में आ गये तथा श्रीगिरिराज में विराजने लगे ।

इनके पद गान की प्रशंसा तानसेन भी करते थे । कहते हैं, तानसेन ने इनसे सङ्गीत की शिक्षा ली थी ।

श्रीगोविन्द स्वामी और श्रीनाथजी में प्रगाढ़ मैत्री थी । वे साथ-साथ खेलते, बातें करते ।

जनश्रुति है कि 'एक बार स्वामीजी, श्रीहरिदासजी के दर्शन हेतु श्रीवृन्दावन पधारे । श्रीहरिदासजी सङ्गीत के महाज्ञाता तो थे ही, साथ ही अनन्य रसिक तथा भक्ताग्रगण्य भी थे । वे इनके गान की प्रशंसा सुन चुके थे, इनसे बोले, "भैया गोविन्द ! कोई पद सुनाओ ।" इन्होंने पद सुनाया । पद सुनकर स्वामी जी रीझ उठे तथा कहने लगे, 'गोविन्द श्रीकृष्ण तुम्हारे पद सुनते ही हैं, कि गाते भी हैं ।" गोविन्द सखा ने कहा, "प्रभो ! श्रीकृष्ण पद गाते भी हैं (अर्थात्

गोविन्द स्वामी ने श्रीकृष्ण गान सुना है)। गोविन्द स्वामी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने पद गाया। स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज पद सुन कर तन्मय हो गये व वाह वाह करने लगे। स्वामी जी ने गोविन्द स्वामी से पुनः पूछा "भैया कभी श्रीजी का गान भी सुना है ?" गोविन्द सखा ने कहा "नहीं" -तथा आग्रह किया, "प्रभुपाद ! यदि मुझे योग्य समझते हों तो सुनवा कर कृतार्थ करें"। कहते हैं स्वामीजी की बात रखते हुए किसी प्रसङ्ग में प्रियाजी ने मधुर अलाप लिया। उस, शत शत वीणाओं को तिरस्कृत करती मधुर ध्वनि को सुन, गोविन्द स्वामी मूर्छित हो गये तथा भावाभिभूत हुए मग्न हो गये।

कुछ महानुभावों ने उपरोक्त घटना को अन्य ढंग से कहा है। उसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं। सम्भव है यह दो अलग-अलग घटनाऐं ही हों-

गोविन्द स्वामी तथा श्रीनाथजी की मैत्री है यह बात किसी से छिपी न थी। गुसांई विट्ठलनाथजी यह सब जानते थे। एक बार श्रीकृष्ण गान कर रहे थे। बीच में प्रियाजी ने अलाप लिया। उस मधुर सुरीली ध्वनि को सुन गोविन्द स्वामी चकित रह गये। गुसांईजी समझ गये। किसी प्रसङ्ग विशेष में गुसांईजी ने गोविन्द स्वामी से पूछा, "गोविन्द ! श्रीनाथजी कैसा गाते हैं" आप तन्मय हो गये। किञ्चित् संज्ञा प्राप्त कर बोले, "प्रभो ! आप सब जानते ही हैं। मैं क्या हूँ। ऐसा लगता है श्रीनाथजी तो बहुत ही सुन्दर गाते हैं, परन्तु जब प्रियाजी अलाप लेती हैं तो गान में और, और मधुरता भर जाती है।"

एक जगह श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए श्रीगोविन्द स्वामी कह रहे हैं-

अबही ते ढीटा चित चोरत आगे आगे कहा जु करैगो ।
नेक बड़ौ होय हौं बलि जाऊँ सकल ब्रज युवतिन के मन जु हरैगो ॥
देखन के बहाने से उदर में सप्तद्वीप नवखंड,
रानी जसुदा कों दिखायो सोई सांची अनुसरैगो ।
गोविन्द प्रभु के नैन बैन रस सींचत मेरे जाने मन्मथ जु लरैगो ॥

श्रीनन्दरायजी का लाल बालक है तो श्रीनन्दरायजी तथा माता यशोदा के अंक में। ब्रज बालाओं ने तो उसे प्रथम दिन से ही किशोर देखा है। लो ! आज भोर ही में गिरिराज की सघन कुञ्जों में "जाचत दान प्रिया सों।"

महादानी वृषभानु कुमारी , कृपा अवलोकनि दान दै री ।
सब विध सुघर सुजान सुन्दरि, सुनि विनति तू कान दे री ।
गोविन्द प्रभु प्रिय चरण परसि कह्यो जाचक को तू मान दै री ॥

ऐसी अनेक अनुभूतियाँ श्रीगोविन्द स्वामी ने की तथा श्रीनाथजी को गा-गा कर रिझाते रहे।

अन्त में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के साथ ही श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में प्रवेश कर गये। वह कन्दरा द्वार आज भी उनकी भक्ति पूर्ण निष्ठा की गाथा को दोहराता हम सबके लिए मार्ग दर्शन कर रहा है। अद्यावधि वह स्थली, जतीपुरा में दर्शनीय है।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

दूराद्वीक्ष्यकदम्बानां खण्डकन्दरां च गिरेः।
गोवर्द्धनार्चनस्थलमेतद् दृष्ट्वा स्थितस्तत्र॥
क्षेमं करतरु निकटे पारायणमत्र विहितं तै।
दीपोत्सवमिह विहितं महोत्सवं चान्नकूटस्य॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

श्रीमन्महाप्रभुजी यहाँ पधारे, यहीं कदम्ब खण्डी है। श्रीगिरिराजजी की कन्दरा है, श्रीगिरिराजजी की पूजा की स्थली है; इन सब स्थलियों को देखकर श्रीमन्महाप्रभुजी ने छोंकर वृक्ष के नीचे बैठकर सप्ताह पारायण किया। यहाँ दीपोत्सव तथा अन्नकूट उत्सव मनाया।

जिस समय श्रीमहाप्रभुजी श्रीश्यामसुन्दर का श्रृंगार कर रहे थे तो सहसा ही नूपुर ध्वनि सुनाई पड़ी। दृष्टि उठाकर सामने की ओर देखा तो प्रियाजी श्रृंगार सामग्री लिये सामने खड़ी थीं। कहते हैं प्रियाजी द्वारा लाई श्रृंगार सामग्री, महाप्रभुजी ने श्रीश्यामसुन्दर को पुनः धारण कराई।

यहाँ वल्लभ कुल की सातों निधि के दर्शन थे, श्रीमथुरानाथजी के मन्दिर में कई बार सब इकट्ठे विराजते थे। कालान्तर में किन्हीं कारणों से सब अलग हो गये तथा बाहर चले गये।

दण्डौती शिला

यहाँ दण्डौती शिला के दर्शन हैं। श्रीनाथजी के दर्शन करने जाने से पहले सभी वैष्णव श्रीगिरिराजजी को यहाँ दण्डौत करते हैं। श्रीगिरिराज पर चढ़ने से जो अपराध होता है, उसी के मार्जन हेतु यह क्रम अपनाया गया है। पास ही 'सुन्दरी शिला' है।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी का लीला में प्रवेश

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी की भक्ति जगत्प्रसिद्ध है। श्रीनाथजी की सेवा में आप श्रीगिरिराज तलहटी में विराजते रहे। अष्टछाप के सभी भक्तों ने आपका यशोगान किया है। किसी लीला का आस्वादन करते-करते आप उठकर

श्रीगिरिराज कन्दरा में चले गये। श्रीचतुर्भुजदासजी उस समय वहीं उपस्थित थे। उन्होंने करुण स्वर से गाया -

श्रीविट्ठलनाथ से प्रभु भये, न ह्वै हैं।
पाछे सुने न देखे आगे, वह संग फिर न बनै हैं॥
श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोऊ पछितै हैं।
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु सिरै हैं॥

कहते हैं गुसांईजी से श्रीचतुर्भुजदासजी ने निवेदन किया, "प्रभो ! मुझे भी साथ ले चलिये' साथ ही चतुर्भुजदासजी भी गिरि कन्दरा में प्रविष्ट हो, श्रीनाथजी की सेवा में सदा के लिये चले गये।

यह स्थली आज भी दर्शनीय है। अपने करुण प्रसङ्ग से आज भी भावुक भक्तों को कुरेदती हुई (जतीपुरा) गोपालपुर में दर्शनीय है।

बिलछू कुण्ड

परिक्रमा की बाँई ओर जतीपुरा से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है। श्रीकृष्णदास अधिकारी की निवास स्थली है। श्रीकृष्ण की कन्दुक क्रीड़ा स्थली है यह।

एक बार किशोरी श्रीराधा अपनी सखियों सहित यहाँ उद्यान में विचरण कर रही थीं। कभी वे पुष्प चयन करतीं, कभी माला बना सम्हाल रखतीं और कभी सखियों पर पुष्पों से प्रहार करतीं। प्रिय स्मृति में वे इतनी निमग्न थीं कि उन्हें बाह्य कुछ विशेष सुधि न थी।

इधर प्रियतम ने श्रीगिरिराज पर खड़े दूर से सखियों को देखा। सखाओं सहित वहीं चले आये और पास ही गेंद खेलने लगे। कभी स्वयं उछालते और पकड़ते और कभी सखाओं को पकड़ने के लिये कहते, जानबूझकर एकबार गेंद को ऐसे उछाला कि गेंद उद्यान में जा गिरी। सखाओं से अनुनय विनय करने लगे, बोले-"भैया तुम मेरी गेंद ले आओ" परन्तु किसी भी सखा ने उत्साह न दिखाया। अन्ततः स्वयं ही उस उद्यान में गये, जहाँ प्रियाजी थीं और गेंद खोजने लगे।

वृषभानु दुलारी के पाँव का बिछुआ खो गया था। सखियाँ पहले से ही उसे खोज रही थीं, परन्तु बहुत खोजने पर भी न मिला। ढूँढ़ती-ढूँढ़ती कुछ सखियाँ वहीं आ गई और श्यामसुन्दर से बोलीं, "तुमने हमारी किशोरी का बिछुआ देखा है क्या ?" आपने उनकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया, "बिछुआ, बिछुआ हम क्या जानें ? हम तो अपनी गेंद खोज रहे हैं।" उनकी ओर देख पुनः बोले, "लगता है तुम लोगों ने मेरी गेंद अपने पास सम्हाल कर रख ली है। यदि नहीं

तो तलाशी दो। बेचारी ललिता तथा विशाखा झूठ-मूठ के लगे इस आरोप से सकुचा गईं तथा तलाशी देने को मान गईं।

प्रियतम ने टटोल कर देख लिया, गेंद फिर भी न मिली। बोले, "लगता है अपनी स्वामिनी के पास छिपा आई हो, तभी निधड़क होकर यहाँ विचरण कर रही हो और ऊपर से मुझ पर आरोप लगा रही हो कि किशोरी का बिछुआ खो गया है।" बिछुआ तो श्यामसुन्दर ने पहले ही अपने पटके के छोर में बाँध लिया था। सखा गउओं को घेरने के लिए चले गये, और नन्दनन्दन किशोरी श्रीराधा के पास, गेंद खोजने के बहाने से सखियों के साथ-साथ जा पहुँचे।

प्रियतम के रसीले संस्पर्श ने किशोरी श्रीराधा को किसी सुरस स्मृति से झकझोर दिया। पता नहीं फिर गेंद खोजी अथवा नहीं। बिछुए की बात का स्मरण दिलाते हुए प्रियतम बोले, "प्रिये यदि मैं तुम्हारा बिछुआ खोज कर ला दूँ तो पुरस्कार स्वरूप क्या प्रदान करोगी।" किशोरी श्रीराधा, मुँह माँगी वस्तु देने को तैयार हो गईं। प्रियतम ने तुरन्त अपने पटके के छोर से बिछुआ निकाल धारण करा दिया और बोले, "रैन निवास" प्रियाजी सकुचा गईं। प्रियाजी की सकुच-श्री का लाभ उठाते यह प्रणयी प्रियतम मग्न हो गये। प्रियाजी की वह रसमयी उमड़न तथा इन प्रणयी प्रियतम की रसीली चेष्टाऐं। रस विलास की मधुर केलि अविराम गतिमान रही। श्रीगिरिराज की सघन कन्दराओं में युगल सुन्दर तथा इनकी निज-स्वरूपभूता किशोरी वृन्द, रस-मग्न हो गईं।

उन्हीं रस वार्ताओं को दोहराती यह स्थली 'बिलछू वन' नाम से विख्यात है। श्रीहरदेव जी का प्राकट्य यहीं से हुआ।

जान अजान

गोपीभियौ पृष्टौ कृष्ण ज्ञातो च अज्ञातः।
वृक्षौ तन्नाम्नाख्यातौ चाख्याय तौ दृष्टौ॥

(श्रीवल्लभदिग्विजय)

श्रीकृष्ण के छिप जाने पर गोपिकाओं ने पूछा, श्रीकृष्ण किधर गये हैं। एक वृक्ष ने कहा हम जानें, तथा दूसरे ने कहा हम न जानें, अतः एक ही जाति के यह दो वृक्ष 'जान' तथा 'अजान' नाम से विख्यात हो गये।

कई भक्तों ने यहाँ श्रीश्यामसुन्दर की आँख मिचौनी लीला के दर्शन किये हैं।

सखी स्थली

अहे श्रीनिवास ! एई सखी स्थली ग्राम।
चन्द्रावली स्थिति एथे-सखी-धरा नाम॥

(भ० र०)

वर्तमान में यह स्थली सखी-थरा नाम से विख्यात है। मानसी-गङ्गा के उत्तर में तथा श्रीगोवर्द्धन के पश्चिमोत्तर में स्थित है।

श्रीकृष्ण की प्रिय सखी चन्द्रावलीजी का प्रिय स्थल है। पास ही सखी-वन है। सखी-वन में ही एक स्थान, सखी-स्थल नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ सखि कुण्ड है।

सकराया

गोवर्द्धन ग्राम के पश्चिम में डेढ़ मील दूर है। कहते हैं जिस समय देवराज इन्द्र श्रीगोविन्द भगवान का अभिषेक करने ब्रज में आये तो इसी स्थल पर उतरे थे।

'शक्र आया' शब्द सुविधानुसार ग्रामीण भाषा में 'सकराया' नाम से विख्यात हो गया।

नीम ग्राम

श्रीनियमानन्दजी का जन्म दक्षिण में गोदावरी तटवर्ती वैदूर्यपत्तन नामक स्थान में हुआ। वे ब्रज में कब और कैसे पधारे ! इस विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वे ब्रज में पधारे तथा श्रीगिरिराज जी के निकट नीम-ग्राम में निवास करने लगे। कहते हैं श्रीनारदजी ने इन्हें गोपाल मन्त्र की दीक्षा स्वयं ही दी थी।

श्रीनियमानन्दजी नीमग्राम में विराजते थे। एक बार एक यति धर्म-चर्चा हेतु, इनके पास पधारे। दो भक्तों का मिलन था। चर्चा में इतने तन्मय हो गये कि सन्ध्या हो गई। श्रीनियमानन्दजी ने यतिजी से भोजन करने का आग्रह किया, किन्तु सूर्यास्त के पश्चात् यतिजी ने भोजन ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। श्रीनियमानन्दजी को अभ्यागत को निराहार लौटाने में कष्ट हुआ। तभी सामने के एक नीम के वृक्ष के पीछे से प्रकाश दीखा और सूर्य भगवान के साक्षात् दर्शन हुए। यह सब देख यतिजी ने प्रसाद ग्रहण किया। कहते हैं वह प्रकाश भगवान के चक्र का था। इसी घटना के पश्चात् श्रीनियमानन्दजी, निम्बादित्य अथवा निम्बार्क नाम से जाने गये। यह सब श्रीनिम्बार्क भगवान की दिव्य शक्ति का ही प्रकाश था। वे भगवान के सुदर्शन चक्र का अवतार माने जाते हैं।

आपने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 'वेदान्त-पारिजात सौरभ', 'वेदान्त कामधेनु', 'रहस्य षोडशी', 'प्रपन्न कल्पवल्ली' तथा 'श्रीकृष्ण स्तोत्र' आदि की रचना की।

श्रीराधाजी की श्रीकृष्ण के समान महत्ता को सर्वप्रथम निम्बार्क सम्प्रदाय में ही स्वीकार किया गया था, इसका श्रेय मुख्य रूप से श्रीमन्निम्बार्काचार्यजी को ही दिया जावेगा जैसा कि दश श्लोकी के निम्न श्लोक से स्पष्ट है-

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्रैः परिसेवितांसदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥[1]

श्रीनिम्बार्काचार्य जी का कथन है कि यदि साधक दैन्यादि गुणों से भूषित हो प्रिया-प्रियतम का उक्त प्रकार से चिन्तन करे तो उनकी अहैतुकी भक्ति प्राप्त करता है।

आपके मुख्य शिष्यों में श्रीनिवासाचार्यजी, श्रीऔदुम्बराचार्यजी तथा गौरमुखाचार्य जी के नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीऔदुम्बराचार्यजी ने प्रिया-प्रियतम के निकट श्रीमन्निम्बार्काचार्य जी महाराज के श्रीरङ्गदेवी के रूप में दर्शन किये थे।

नीम ग्राम में ही आप विशेषतः निवास करते रहे हैं। यहाँ श्रीसुदर्शन जी का मन्दिर तथा श्रीसुदर्शन कुण्ड है।

कोनई ग्राम

कै ना आई दूती रे श्रीकृष्ण पूछय।
ए हेतु 'क्यों नाई' अब कोनई कहे ॥

(भ० र०)

एक बार श्रीकृष्ण किसी लीला विशेष में अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा की प्रतीक्षा में किञ्चित् व्याकुल हो गये। श्रीराधा तब भी न आईं। उन्होंने किसी सखी को भेजकर न आने का कारण जानना चाहा। जैसे ही सखी ने किशोरी श्रीराधा का नाम लिया, आगे की बात सुनने की प्रतीक्षा किये बिना ही श्यामसुन्दर 'क्यों न आई' 'क्यों न आई' कहकर पुनः पुनः पूछने लगे। इसी से यह स्थली कोनई ग्राम के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

श्रीराधा-कुण्ड से लगभग साढ़े तीन मील दूर है। यहाँ देवी का प्राचीन मन्दिर है। ग्वाल कुण्ड है।

कुञ्जेरा

अबे लोग कहे कुंजेरा नामे ग्राम।
ऐथा राधा कृष्णेर विलास अनुपम ॥

(भ० र०)

1. श्रीराधा श्रीकृष्ण के वामांग में सर्वदा विराजमान रहती हैं। वे उनके अनुरूप शील, सौन्दर्य सम्पन्न, सहस्र-सहस्र सखियों द्वारा परिसेवित हैं। उन्हीं सकल इष्ट प्रदान करने वाली देवी श्रीराधा का मैं स्मरण करता हूँ।

नित्य नवीनता प्रिय इन बावरों को सदा ही नये-नये कौतुक सूझते हैं। अनेक निकुञ्जों में नवीन केलि प्रिय, श्यामसुन्दर, नवल रसास्वादन में मत्त हो जाते हैं। किन्हीं एकान्तिक निकुञ्जों में रस की यह केलि, किसी विशेष रस को ले गतिमान होती है। उन्हीं केलि रहस्यों में महा-मातङ्ग श्यामसुन्दर का करिणी स्वरूपा सखियों सहित रास-विलास सभी को आत्म-विभोर कर देने वाला है। जिसने देखा वही दिव्योन्माद में भर गया। उसी रस रहस्य को अपने गर्भ में छिपाये यह स्थली कुञ्जेरा नाम से विख्यात हो गई।

श्रीराधा-कुण्ड से दो मील दूरी पर स्थित है। यहाँ की लीला का (मत्त मातङ्ग तथा करिणी स्वरूप सखियों का) एक चित्र मन्दिर में दर्शनीय है। कहते हैं यहीं से श्रीराधा-कुण्ड की निकुञ्जों का प्रारम्भ होता है।

सूर्य कुण्ड (छोटा भरना)

यमुनाजनकं सूर्य सर्वरोगापहारकम्।
मङ्गलालयरूपं तं वन्दे कृष्णरतिप्रदम्॥[1]

(भ० र०)

श्रीकृष्ण का ब्रज में प्राकट्य सुन सभी देवता, मुनिगण ब्रह्मा तथा शंकर आदि दर्शन करने पधारे। अपनी सुपुत्री श्रीयमुनाजी की श्रीकृष्ण चरणों में भक्ति देख सूर्य देव भी ब्रज में धन्य होने चले आये। अपने जनों की भावनाओं को सदा से ही सत्कार देते श्रीकृष्ण ने श्रीराधा तथा अन्य सखियों सहित उन्हें दर्शन देकर अनुग्रहीत किया।

श्रीराधाजी नित्य ही सूर्य पूजन हेतु यहाँ पधारती हैं और यह छलिया नागर पुरोहित का वेष धारण कर सूर्य पूजन कराने हेतु यहाँ चले आते हैं। कौतुकपूर्ण मिलन की यह स्थली किसी अन्य ही रस पूजन की भूमिका बन जाती है।

श्रीराधा-कुण्ड से लगभग पाँच मील की दूरी पर है। यहाँ सूर्य भगवान का मन्दिर है। सूर्य कुण्ड है। सिद्ध बाबा की भजन स्थली है।

कहते हैं यहाँ श्रीमधुसूदनदास बाबाजी महाराज भजन करते थे। स्वप्न में श्रीकिशोरीजी ने उनसे कहा, "मेरी चन्द्रिका कुण्ड में गिर गई है। तुम जाकर कुण्ड के अमुक स्थल से निकाल लो।" बाबा सुबह होते ही वहाँ गये और चन्द्रिका निकाल लाये। आज भी वह चन्द्रिका के स्वरूप का एक शिला खण्ड स्थानीय महात्माओं ने सम्हाल रखा है। जो सर्वसाधारण के लिए दर्शनीय है।

जसोंदी (जसुमति)

श्रीराधा कुण्ड से श्रीवृन्दावन मार्ग पर लगभग तीन मील की दूरी पर

1. श्रीयमुनाजी के पिता, सर्व रोगों को क्षय करने वाले तथा श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग प्रदान करने वाले व मंगल करने वाले, सूर्यदेव की मैं वन्दना करता हूँ।

स्थित है। भगवान श्रीकृष्ण की जसुमति सखी का गाँव है। सूर्य कुण्ड यहाँ दर्शनीय है।

बसोति (बसति)

श्रीराधा कुण्ड से वृन्दावन मार्ग पर लगभग दो मील की दूरी पर स्थित है। वसुमति सखि की निवास स्थली है।

'वसन्त कुण्ड' तथा 'राज कदम्ब' यहाँ के मुख्य आकर्षण हैं।

मुखराई

श्रीराधा कुण्ड के दक्षिण की ओर लगभग सवा मील की दूरी पर स्थित है। श्रीराधारानी की नानी मुखरादेवी यहीं निवास करती थीं। वह श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा का परस्पर अनायास मिलन देखकर बहुत प्रसन्न होती थीं।

तोष ग्राम

यह गाँव बहुला वन (वाटी) से नैऋत्य दक्षिण में लगभग ढाई मील की दूरी पर स्थित है। तोष नाम के श्रीकृष्ण के प्रिय सखा थे, उन्हीं का यह गाँव है। ये नृत्य कला में पारङ्गत थे। कहते हैं श्रीकृष्ण ने नृत्य की शिक्षा इनसे भी प्राप्त की थी।

यहाँ तोष कुण्ड, गोपालजी तथा राधारमणजी की स्थलियाँ विशेष दर्शनीय हैं।

जखिन गाँव

तोष ग्राम से पश्चिम दक्षिण में लगभग चार मील की दूरी पर स्थित है। रोहिणी कुण्ड तथा बलदेवजी का मन्दिर है। पास ही बलभद्र कुण्ड भी है।

अड़ींग

गोवर्द्धन से मथुरा मार्ग पर लगभग तीन मील की दूरी पर स्थित है। यह बलदेवजी का स्थान है। ऐसी मान्यता है कि कंस का बध हो जाने के बाद उसके आठों भाई यहाँ भाग आये थे, जिन्हें बलरामजी ने मार दिया था।

कुण्ड के अग्नि कोण में किलोल बिहारी के दर्शन हैं।

गोपिकाएँ इस मार्ग से दूध-दही बेचने जाया करती थीं। श्रीकृष्ण प्रायः दूध-दही का दान लिये बिना उन्हें जाने न देते। एक बार ब्रज बालाएँ दूध की मटकियाँ सिर पर धरे जा रही थीं-श्रीकृष्ण द्वारा दान माँगे जाने पर भी उन्होंने अनसुनी कर दी, बस फिर क्या था-यह रिझवार अड़ गये। किसी का हाथ बढ़ा रोकते हुए, किसी की मटुकी बरबस ढुरकाते हुए, किसी की साड़ी का छोर खींचते हुए, किसी को मार्ग में बरबस खड़े होकर रोक भाँति-भाँति से सभी

गोपिकाओं को रस में मज्जित करने लगे। 'अड़' 'अड़' कर दान लेने की यह स्थली 'अड़ींग' नाम से विख्यात हो गई।

पैंठा

पारासौली ग्राम से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। जनश्रुति है कि श्रीगिरिराज धारण करने से पहले सखाओं ने श्रीकृष्ण की परीक्षा लेनी चाही। अपने प्रिय सखा से कहा, "कन्हैया यदि तू इस कदम्ब वृक्ष को उखाड़ दे तो मानें, श्रीगिरिराज उठा सकैगो।" भगवान श्रीकृष्ण ने उस कदम्ब वृक्ष को जैसे ही उखाड़ने का प्रयास किया तो अपने प्रिय सखा में विश्वास दिखलाते, सखा बोले, "भैया रे ! तेरी बात ठीक है, तू श्रीगिरिराज को उठाय सकै है।" वह वृक्ष आज भी अपनी स्मृति दिलाता यहाँ दर्शनीय है।

यहाँ चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन हैं। 'क्षीरसागर' 'नारायण सर' 'बलभद्र कुण्ड' तथा 'लक्ष्मी कूप' दर्शनीय हैं।

बच्छ गाँव

पैंठा के तीन मील दक्षिण में 'बच्छ गाँव' है। यहाँ 'कनक सागर', 'सहस्र कुण्ड', 'रामकुण्ड', 'रावरी कुण्ड', 'माखन चोर ठाकुर' अपने बछड़ों की रक्षा करने वाले 'वत्स बिहारी ठाकुर' दर्शनीय हैं।

गांठौली

एथा होलि खेलि दौंहे वैसे सिंहासने।
सखी दुहू वस्त्रे गांठि दिला संगोपने॥

(भ० र०)

ब्रज की होरी की धूम जन मानस में उन्माद भर देती है। बालक, युवक, वृद्ध तथा युवति जन, नवीन उत्साह में भर हर्षित प्रफुल्लित हो जाते हैं। यावत् प्रकृति में छाई यह फाग की अनुराग लहरी इन रसिक बावरों की किसी सहज तरङ्ग को अपने में संजोए बौरा जाती है।

होरी की इस उमङ्ग तरङ्ग से उल्लसित ब्रज रमणी वृन्द इन रसिक बावरों सहित झूम में उमड़े। अबीर गुलाल से रञ्जित नवल हो गये रस बावरे। परम कोमलाङ्गी किशोरी को श्रमित जान प्रियतम क्षण भर को कुछ शान्त से हो गये। रङ्ग की उस धूम में तनिक विराम दीखा। प्रियाजी एक शिला पर आकर बैठ गईं। प्रियतम की उमङ्ग लहरी अभी भी चपल हो रही थी। वे भी रस विवश से हो, वहीं पास आ विराजे। सखियों को कौतुक सूझा। उन्होंने चुपके से दोनों के वस्त्रों में गाँठ लगा दी तथा उस मधुरिमा का पान करती रहीं। जब दोनों

ही चलने को उद्यत हुए तो अपने वस्त्रों में गाँठ लगी देख, विवाहोत्सव का सा कौतुक जान अनुराग रङ्ग में भर गये। हृदय का अनुराग उछल पड़ा, किशोरी श्रीराधा नयन नत कर सकुचा गईं। वस्त्रों में गाँठ लगाने के कारण इस स्थान का नाम गाँठौली हो गया।

श्रीनाथजी की अनन्य सेविका 'पाथो गूजरी' यहीं की थीं। इस गूजरी के खेत श्रीगिरिराज तलहटी में थे। जब वह अपने खेतों में जाती, तो प्रायः श्रीनाथजी उसकी रोटी लूट-लूट कर खा लेते। श्रीनाथजी की कृपा भाजन थी वह।

'जहाँ अष्टछाप गावें, तहाँ ललिता बीन तथा श्याम पखावज बजावें' श्रीनाथजी के पखावजी श्रीश्यामजी तथा उनकी पुत्री ललिता दोनों ही श्रीनाथजी के पद गान के समय अपने वाद्यों से सङ्गत देते। कहते हैं श्रीनाथजी कभी-कभी गांठौली में श्याम पखावजी तथा उनकी पुत्री ललिता से बीन सुनने पधारते।

पास ही गुलाल कुण्ड है।

गुलाल कुण्ड

ए हेतु गांठोली- ए गुलाल कुण्ड जले।
एबे फाग देखे लोक वसन्तेर काले॥

(भ० र०)

होरी का उत्सव, उसमें उमगे अनुराग-रङ्ग में छके रसिक शेखर तथा इनकी प्राणाराध्या श्रीराधा और उन्हीं की काय-व्यूह स्वरूपा यह ब्रज बालाऐं। अनुराग रङ्ग की यह खुमारी रस रङ्ग में भीज और, और निखर गई। अबीर तथा गुलाल के बादल आकाश में छा गये। उसी में भीजे तन, मन, वसन। सखियों ने अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा को होरी के लिए आमन्त्रित किया-

'अरी चल वेगि छबीली, हरि सौं खेलें फाग।

अपनी-अपनी पिचकारी लिए, हाथ में गुलाल ले नव उमंगों में भरी प्रिय मिलनोत्कण्ठा में सजी, संवरी यह बालाऐं! होरी का रङ्ग सभी को रञ्जित करने लगा। वे चल दीं-

भरि-भरि रंग पिचकारिन छवि सों छिरकत हरि तन तीय।
कुटिल कटाक्ष प्रेम रंग भरि-भरि भरति पीय को हीय॥'

इधर पिचकारियों से रङ्ग बरसने लगा, उधर बालाओं के हृदय उमगने लगे। प्रिय की रूप मधुरिमा, अङ्ग मधुरिमा का सामीप्य पा, किसी नवल रस में भर, खो जाने को जी चाहने लगा। वे अपने प्राणप्रेष्ठ की कुटिल कटाक्षों से झरती रस माधुरीपूर्ण उमंग को अपने हृदय में भर, बसाये ले रही हैं। और फिर-

दुरि मुरि भरन बचावनि छवि सों बाढ्यो है रंग अपार।
मैंन मुनि सी बोलत डोलत पग नूपुर झंकार ॥

होली के खेल में यह चपलाऐं मत्त, उन्मत्त दीख रही हैं और उनके प्रेम मतवाले यह रसिक शेखर भी होरी के रङ्ग में, मिलनोत्कण्ठा में उमगे-उमगे पड़ रहे हैं। ऐसे रङ्ग भीजे युगल और निजस्वरूपभूता इन ब्रजबालाओं को देख श्रीनन्ददासजी ने कहा-

'नन्ददास अपने ठाकुर की दौरि बलैया लेय।'

लो ! यह रङ्गीले खिलाड़ी अब स्नान हेतु जल में प्रविष्ट हुए। होरी की वह धूम अभी भी संयम में न आई। जल की अनवरत बौछारें, इनके सुभग गात से रञ्जित वह कुण्ड, गुलाल के रङ्ग से रञ्जित हो गया। तभी से यह कुण्ड 'गुलाल कुण्ड' कहलाया।

आज भी फाग में यहाँ बिखरा अनुराग भक्तों को रस में सराबोर कर देता है।

टोड़ की घनो

यह एक सघन वन है। श्रीनाथजी को यवनों के आक्रमणों के भय वश उन दिनों कई बार यहाँ लाकर सघन वन में छिपाया था।

मीठा सा परिहास करते हुए श्रीकुंभनदासजी ने इस कंटकाकीर्ण वन को ले कर श्रीनाथजी को उपालम्भ दिया है-

भावति तोहि टोड़ को घनो।
काँटा लगे गोखरू टूटे, फाट्यो है सब तन्यौ ॥
सिंहहि कहा लोमड़ी को डर यह कहा बानिक बन्यौ।
कुंभनदास तुम गोवर्द्धन धर वह तो नीच डेढ़नी जन्यौ॥

सघन वन होने के कारण ही इस स्थली को 'टोड़ की घनों' कहकर पुकारा जाता है। श्रीनाथजी को यह स्थली अत्यन्त प्रिय थी।

ब्रज भूमि मोहिनी

कामवन

(विमल काम की फूली बेलि)

चतुर्थ खण्ड

तत्र कामवने रम्ये दिव्य मन्दिर संयुते ।
क्रीड़न्त्यः कन्दुकैः सर्वास्तस्थुः कृष्णप्रियाः शुभाः ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. द्योसेरस (देव शीर्ष स्थान)
2. सामरीखेरा
3. परमदरा
4. आदिबद्री
5. नवनीतपर्वत
6. गोदृष्टिवन (गुहाना)
7. बूढ़ेबद्री
8. कनवारो

चतुर्थ काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि ! मम लोके महीयते ॥[1]

(आ० वा० पु०)

श्रीनारदजी ने भक्ति सूत्र में प्रेम का वर्णन करते हुए 'यथा ब्रज-गोपिकानां' कहकर उत्कर्ष दिखलाया है। वास्तव में गोपिकाऐं प्रेम की मूर्तरूपा हैं। उनका प्रेम स्वार्थ रहित प्रेम है। श्रीकृष्ण के सुख हेतु ही उनका प्रेम निखरा है। 'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्' गोपिकाओं का प्रेम, जो 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पल्लवित तथा पोषित हुआ है, 'काम' ही कहा गया है। यह 'काम' शब्द लौकिक तथा वासनाजन्य नहीं है। काम तो भगवान शङ्कर ने पहले ही भस्म कर दिया था, अतः श्रीकृष्ण ने तो उसे जीवन दान दिया है। शत्-शत् कामदेव तो श्रीकृष्ण के दर्शन करके ही विलुण्ठित हो जाते हैं। यह 'काम' अत्यन्त पवित्र तथा विशुद्ध है। श्रीकृष्ण लीला सिद्धावस्था के साधकों के लिए ही अनुभवगम्य है। जहाँ लौकिकताकी गन्ध नहीं, स्वार्थ का प्रवेश नहीं, आत्म सुख की चाह नहीं तथा प्रेमास्पद के प्रति समर्पण ही समर्पण है, वहीं प्रेम है। श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित होने पर प्रेम ही, लौकिक भाषा में 'काम' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है।

श्रीकृष्ण-प्राप्त लीला परिकर के किन्हीं संत ने श्रीकृष्ण प्रेम की गरिमा दिखलाते हुए कहा है, "समस्त लौकिक कामनाओं का त्यागी ही श्रीकृष्ण काम भोगी हो सकता है।"

यह काम नित्य वर्धमान है, क्योंकि प्रेम का स्वरूप भी नित्य वर्धमान है। ब्रजाङ्गनाओं में किसी प्रकार के लौकिक काम की गन्ध की कल्पना करना भी घोर पतन में ले जाने वाला है। इन ब्रजबालाओं का स्वार्थ कुछ है ही नहीं। वे जो भी कृत्य करती हैं, श्रीकृष्ण के लिए ही है। अपना श्रृंगार करती हैं, इसी आशय से कि श्रीकृष्ण उसे देखकर सुखी होंगे; दूध दही तथा माखन सम्हाल-सम्हाल कर रखती हैं, इसलिए कि श्रीकृष्ण उसका आस्वादन करेंगे, घाट-बाट में, यमुना तट पर, वंशीवट पर जाने में उनका हेतु श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करना ही है। वे श्रीकृष्णमयी हैं; 'जित देखों तित श्याममयी हैं' अतः श्रीकृष्ण के लिए ही वे जीवन धारण किये हुए हैं। एक स्वर से कहना होगा कि

1. चतुर्थ कामवन नामक वन सभी वनों में श्रेष्ठ है। हे देवि ! इस वन में गमन करने वाला मेरे धाम में पूजनीय होता है।

जो भाव सहज ही श्रीकृष्ण की ओर ले जाने में सहायक है, वही प्रेम है अथवा शुद्धतम काम है, इसके अतिरिक्त सभी विडम्बना है तथा त्याज्य है ।

इन ब्रज गोपिकाओं की कामनाओं की उत्पत्ति तथा विविध प्रकार से श्रीकृष्ण द्वारा उनकी कामनाओं का शमन इसी स्थान पर होने के कारण यह स्थली 'कामवन' कहलाती है ।

जहाँ ब्रजाङ्गनाओं तथा अन्य सभीका अभीप्सित 'काम' बनता है-वही कामवन है।

ब्रज की मुख्य लीला स्थलियों में से एक है । 'कामवन' को आदि वृन्दावन भी कहा गया है । यहाँ श्रीवृन्दादेवी विराजती हैं । श्रीवृन्दावन की सीमा का विस्तार दूर-दूर तक फैला हुआ है । श्रीगिरिराज, बरसाना तथा नन्दग्राम आदि स्थलियाँ, श्रीवृन्दावन की सीमा के अन्तर्गत ही मानी गई हैं । ब्रज की सभी स्थलियाँ, श्रीवृन्दावन की सीमा के अन्तर्गत ही मानी गई हैं । ब्रज की सभी स्थलियाँ किसी न किसी लीला से संयुत हुई, श्रीकृष्ण से सम्बन्धित हैं ।

महाभारत में वर्णित 'कामवन' भी यही माना गया हैं । पाण्डवों ने यहाँ अज्ञातवास किया था । वर्तमान कामवन में अनेक ऐसे स्थल दिखलाई देते हैं, जिससे इसे महाभारत से सम्बन्धित भी माना जा सकता है । पाँचों पाण्डवों की मूर्त्तियाँ यहाँ विराजमान हैं ।

धर्मराज युधिष्ठिरजी के नाम से धर्म कूप तथा धर्म कुण्ड भी विख्यात हैं । इस स्थली से पाण्डवों का सम्बन्ध रहा दीखता है ।

कामसेन राजा का सिद्धि स्थल भी यही माना गया है ।

यहाँ अनेक तीर्थ, सरोवर, कुण्ड तथा मन्दिरों में विराजमान श्रीगोपीनाथजी, गोकुल चन्द्रमाजी, मदनमोहनजी, ठाकुर स्वरूप दर्शनीय हैं ।

कामवन के अधीश्वर श्रीगोपीनाथजी हैं ।

माहात्म्य

ततः काम्यवनं राजन् ! यत्र बाल्ये स्थितो भवान् ।
स्नानमात्रेण सर्वेषां सर्वकामफलप्रदम् ॥

(स्क० पु०)

हे महाराज ! उसके पश्चात् काम्यवन है । जहाँ बाल्यावस्था में आप पधारे थे । इस वन में स्नान मात्र से सभी की प्रत्येक कामना पूर्ण हो जाती हैं ।

जहाँ सभी कामनाएँ सहज ही पूरी हो जाती हैं, वही कामवन है ।

विष्णु पुराण के अनुसार यहाँ छोटे-बड़े असंख्य तीर्थ हैं । ८४ तीर्थ, ८४ मन्दिर, ८४ खम्भ, जोकि राजा कामसेन द्वारा निर्मित हैं । देवताओं तथा असुरों ने मिलकर १६८ खम्भ बनाये थे-ऐसी भी मान्यता है ।

विमल कुण्ड

विमलस्य च कुण्डे च सर्वपापप्रमुच्यते ।
यस्तत्र मुञ्चति प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥[1]

(आ० वा०)

यत्तत्र विमल कुण्डं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तत्र स्नातो नरो भद्रे वैष्णवं लभते पदम् ॥[2]

(वृ० ना० पु०)

दत्त्वामुक्तिं नृपतये श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ।
तत्सुताः सुन्दरीर्नीत्वा ब्रजमण्डलमाययौ ॥[3]

(गर्ग संहिता 4/7/25)

सिन्धु देश में चम्पक नगरी के राजा विमल थे । उनके कोई सन्तान न थी । श्रीयाज्ञवल्क्यजी की कृपा से उनकी छः हजार रानियों के अनेक कन्याओं ने जन्म लिया । वे सब कन्याएँ श्रीराम अवतार के समय आश्वासन प्राप्त अयोध्या वासिनी स्त्रियाँ थीं । इन सुन्दर रूपवती कन्याओं के विवाह के लिये श्रीयाज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा सुझाए गये योग्य वर (श्रीकृष्ण) की खोज में राजा विमल ने अपना दूत भेजा । वह मथुरा नगरी में आया ।

मथुरा में भोजराज कंस के भय से सभी आतङ्कित थे तथा बहुत छिपकर उस दूत को वसुदेवजी के छः पुत्रों के वध की तथा सातवीं कन्या के आकाश में चले जाने की बात पता चली ।

भीष्मजी के सहसा वहाँ चले आने से सारी घटना का प्रकाश हुआ, तो वह दूत पुनः वृन्दावन में, यमुना तट पर श्रीकृष्ण के दर्शन करके कृतार्थ हो गया ।

राजा विमल का निमन्त्रण पा श्रीकृष्ण चम्पक नगरी पहुँचे तथा राजा विमल की कन्याओं को अपने साथ ले, ब्रजमण्डल में आ गये । वे कन्याएँ रमणीय काम्यवन में भगवान श्रीकृष्ण के साथ कन्दुक क्रीड़ा द्वारा आमोद-प्रमोद में रत हो गईं । इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप धारण कर इन विमल कन्याओं के साथ रास किया ।

उस रासमण्डल में उन विमल कुमारियों के आनन्दाश्रुओं से प्रपूरित यह कुण्ड 'विमल-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया ।

---

1. विमल कुण्ड सर्व पापों को क्षय कर देने वाला है । इस कुण्ड पर मृत्यु को प्राप्त जन निश्चय ही मेरे धाम को प्राप्त होते हैं ।
2. ब्रज में सभी तीर्थ निवास करते हैं । काम्यवन में उत्तम से भी उत्तम विमल कुण्ड है, जहाँ स्नान करने वाला वैष्णव पद को प्राप्त करता है । अतः विमल कुण्ड यथा नाम तथा गुण की उक्ति से सर्वथा भूषित है ।
3. इस प्रकार राजा को मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उनकी कुमारियों को साथ ले, ब्रज मण्डल में आ गये ।

विमल कुण्ड का दर्शन, पान तथा पूजन करके मनुष्य के सभी पाप क्षय हो जाते हैं।

इसके अतिरिक्त विमल कुण्ड के प्राकट्य के विषय में एक अन्य गाथा जनश्रुति रूप में विख्यात है-

चतुर्मास में सभी तीर्थ ब्रज में निवास करते हैं। एकबार जब पुष्कर्राज यहाँ न पधारे तो श्रीकृष्ण ने योगमाया का स्मरण किया। कहते हैं, उसी समय पृथ्वी में जल प्रकट हुआ, उस जल से एक सुन्दर स्त्री प्रकट हुई। वह सुन्दर स्त्री (विमला) शुद्ध तथा किसी भी प्रकार के मल से रहित थी, अतः श्रीकृष्ण ने वरदान दिया कि "तुम्हारा आज से विमलादेवी नाम से पूजन होगा और यह स्थली कुण्ड का आकार ले तुम्हारे ही नाम से विख्यात हो जायेगी। जो भी इस विमलकुण्ड में स्नान करेगा, वह सभी पापों से मुक्त हो जावेगा तथा उसका चित्त शुद्ध हो जायेगा। उसे सात बार पुष्कर स्नान का फल प्राप्त होगा।" तभी से यह कुण्ड 'विमल-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

यह ग्राम के दक्षिण पश्चिम कोने में स्थित हैं, दृश्य बड़ा ही रमणीय है। कुण्ड के चारों ओर दाऊजी, सूर्यदेव, नील कण्ठेश्वर महादेवजी, श्रीगोवर्द्धननाथजी, श्रीमदनगोपालजी तथा श्रीकामवन विहारी, श्रीविमला देवी, श्रीमुरली मनोहर, श्रीगङ्गाजी, श्रीगोपालजी विराजमान हैं।

श्रीजयकृष्णदास बाबा (विमल-कुण्ड)

ये उच्चकोटि के भक्त थे। विमल कुण्ड पर ही निवास करते, मधुकरी वृत्ति से जीवन यापन करते। इनकी मानसी सेवा सिद्ध हो गई थी। एक बार सेवा में रत थे-सहसा इन्हें बड़ी व्याकुलता हुई। बाहर चले आये। कुण्ड पर चारों ओर गौ, ग्वालों को देखा। ऐसे मनोहारी दृश्य को देख स्तब्ध हो गये। श्रीकृष्ण, बलराम तथा अन्य ग्वाल बालकों ने बाबा से आग्रह पूर्वक माँगकर जल पान किया। वे अपनी कुटिया में चले गये। वहाँ उन्हें उस दृश्य को देखने की लालसा अधीर करने लगी।

पुनः जब बाबा उस मण्डली को देखने आये तो न तो गउएँ ही थीं न ग्वाल बालक ही। इन्हें बहुत कष्ट हुआ और उदास हो गये। इन्हीं विचारों में रत थे तो इन्हें ऐसा आभास हुआ कि श्रीकृष्ण कह रहे हैं "मैं कल तुम्हारे पास आऊँगा।" यही हुआ अगले दिन एक वृद्धा ने गोपाल स्वरूप लाकर सेवा में अपनी असमर्थता दिखला इन्हें सौंप दिये। वे श्री गोपाल स्वरूप सदा-सदा के लिये इन्हें कृतार्थ करते रहे। इनकी माधुर्य-रस उपासना सिद्ध हो गई थी।